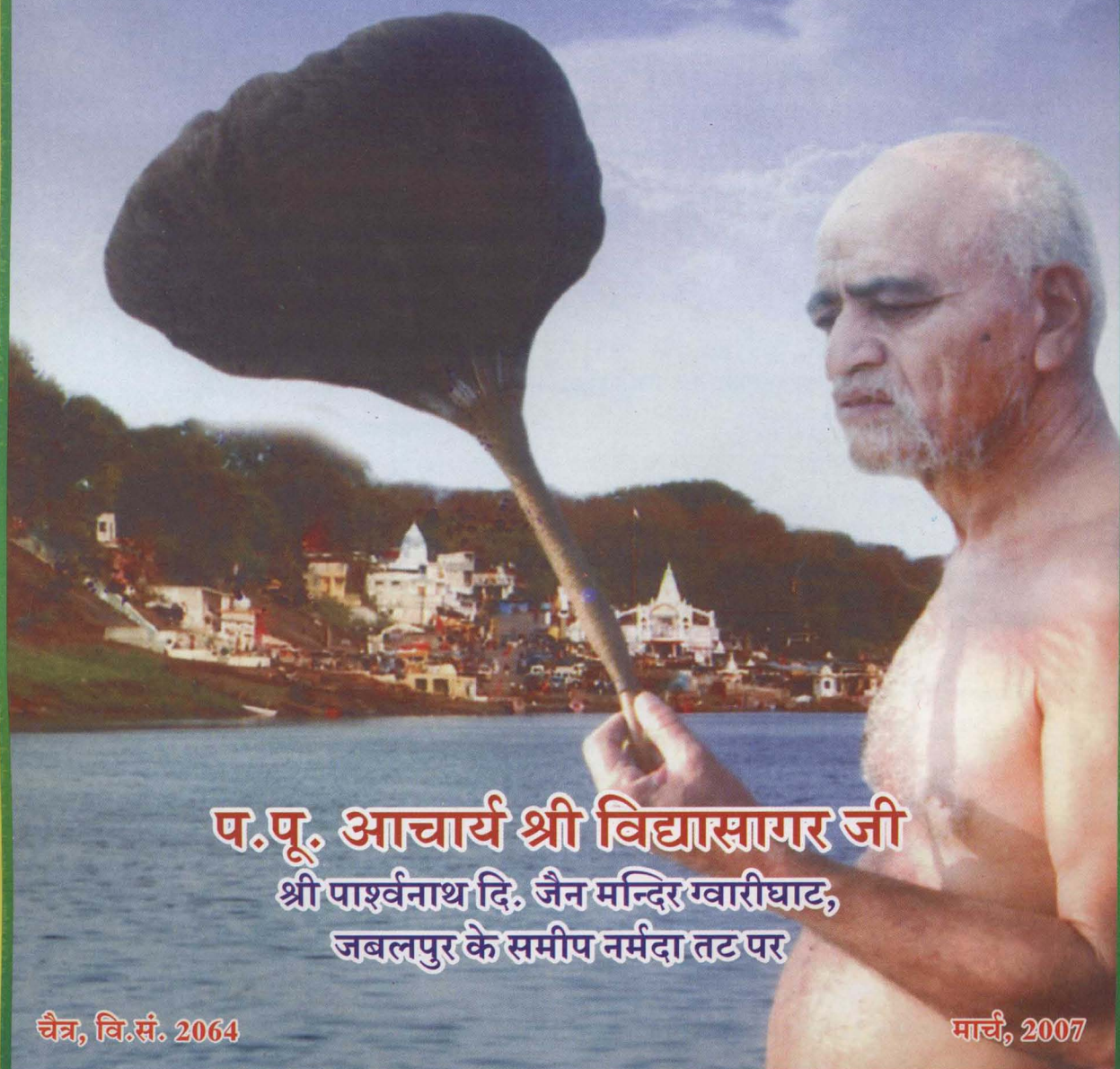


# जिनभाषित

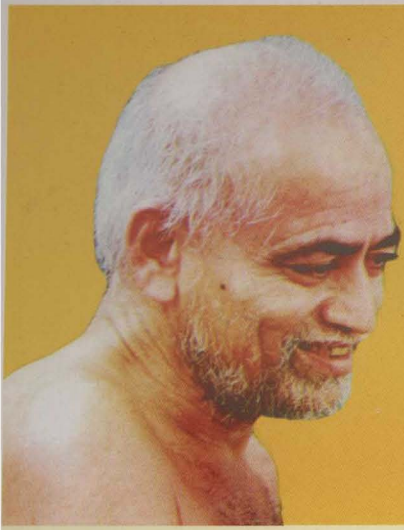
वीर निर्वाण सं. 2533



प.पू. आचार्य श्री विद्यासागर जी  
श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर ग्वारीघाट,  
जबलपुर के समीप नर्मदा तट पर

चैत्र, वि.सं. 2064

मार्च, 2007



# आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

91

तन की गरमी तो मिटे, मन की भी मिट जाय।  
तीर्थ जहाँ पर उभय सुख, अमित अमित मिल जाय ॥

92

अनल सलिल हो विष सुधा, व्याल माल बन जाय  
दया मूर्ति के दरस से, “क्या का क्या” बन जाय ॥

93

सुचिर काल से सो रहा, तन का करता राग।  
ऊषा सम नर जन्म है, जाग सके तो जाग ॥

94

पूर्ण पुण्य का बन्ध हो, पाप-मूल मिट जात।  
दलदल पल में सब धुले, भारी हो बरसात ॥

95

कुछ पर-पीड़ा दूर कर, कुछ पर को दे पीर।  
सुख पाना जन चाहते, तरह-तरह तासीर ॥

96

दुर्जन से जब भेंट हो, सज्जन की पहचान।  
ग्रहण लगे जब भानु को, तभी राहु का भान ॥

97

तीरथ जिसमें अघ धुले, मिलता भव का तीर।  
कीरत जग भर में घुले, मिटती भव की पीर ॥

98

सत्य कार्य, कारण सही, रही अहिंसा-मात।  
फल का कारण फूल है, फूल बचाओ भ्रात! ॥

99

अर्कतूल का पतन हो, जल-कण का पा संग।  
कण या मन के संग से, रहे न मुनि पासंग ॥

100

जिसके उर में प्रभु लसे, क्यों न तजे जड़ राग।  
चन्द्र मिले फिर ना करे, चकवा, चकवी-त्याग ॥

## स्थान एवं समय-संकेत

101

उदय नर्मदा का जहाँ, आम्र-कूट की मोर।  
सर्वोदय का शतक का, उदय हुआ है भोर ॥

102

गगन-गन्ध-गति-गोत्र की, अक्षय-तृतीया पर्व।  
पूर्ण हुआ शुभ सुखद है, पढ़ें सुनें हम सर्व ॥

‘अङ्कानाम् वामतो गतिः’ के अनुसार

गगन-0, गन्ध-2, गति-5, गोत्र-2

वैशाख सुदी 3 वी.नि.सं. 2520 (वि.सं. 2051)

दिनांक 13.05.1994 शुक्रवार

श्री दि. जैन सर्वोदय तीर्थ, अमरकंटक (म.प्र.)

## आचार्य विद्यासागर वचनामृत

### प्रयोग

- सम्यग्दृष्टि को ज्ञान का प्रयोग करने में आनन्द आता है, उसी में वह विश्वास रखता है।
- पढ़नेवाला होशियार नहीं होता है, अभ्यास करने वाला होशियार होता है।

‘सर्वोदयशतक’ से साभार

मार्च 2007

मासिक

वर्ष 6, अङ्क 3

## जिनभाषित

सम्पादक  
प्रो. रतनचन्द्र जैन

## कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा  
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)  
फोन नं. 0755-2424666

## सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़  
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा  
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर  
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौता  
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ  
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

## शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी  
(मे. आर.के.मार्बल)  
किशनगढ़ (राज.)  
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

## प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ  
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,  
आगरा-282 002 (उ.प्र.)  
फोन : 0562-2851428, 2852278

## सदस्यता शुल्क

|                 |              |
|-----------------|--------------|
| शिरोमणि संरक्षक | 5,00,000 रु. |
| परम संरक्षक     | 51,000 रु.   |
| संरक्षक         | 5,000 रु.    |
| आजीवन           | 500 रु.      |
| वार्षिक         | 100 रु.      |
| एक प्रति        | 10 रु.       |

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

## अन्तस्तत्त्व

- |   | पृष्ठ         |
|---|---------------|
| ◆ आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे   | आ.पृ. 2       |
| ◆ कविता : कैसे मनार्ये जन्मजयन्ती<br>: क्षुल्लक श्री ध्यानसागर जी                     | आ.पृ. 3       |
| ◆ स्तवन : मुनि श्री योगसागर जी  | आ.पृ. 4       |
| ● श्री मुनिसुव्रत नाथ-स्तवन   |               |
| ● श्री नमिनाथ-स्तवन   |               |
| ◆ सम्पादकीय : आचार्य कुन्दकुन्द पर आक्षेप :<br>चुप रहकर अनुमोदना न करें               | 2             |
| ◆ प्रवचन  |               |
| ● जीवननिर्वाह नहीं, जीवन निर्माण<br>: आचार्य श्री विद्यासागर जी                       | 7             |
| ● ब्रह्ममुहूर्त में जागरण : मुनि श्री सुधासागर जी                                     | 12            |
| ◆ लेख   |               |
| ● क्या तत्त्वार्थसूत्र में अनुदिश का उल्लेख है?<br>: मुनि श्री नमिसागर जी             | 15            |
| ● भगवान् महावीर के विचार विश्वशान्ति<br>के लिए जरूरी : डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती' | 16            |
| ● जैन समाज एवं संस्कृति पर उछलते प्रश्न<br>: डॉ. अनेकान्त जैन                         | 19            |
| ● जातिभेद पर अमितगति आचार्य<br>: स्व. पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार                        | 23            |
| ● पंचोपचारी पूजा : स्व. पं. मिलापचन्द्र जी कटारिया                                    | 26            |
| ● विद्वत्परिषद् की ओर से स्पष्टीकरण :<br>आम्नाय एक ही है : डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन     | 28            |
| ◆ जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा  | 30            |
| ◆ समाचार  | 6, 29, 31, 32 |

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

## आचार्य कुन्दकुन्द पर आक्षेप

चुप रहकर अनुमोदना न करें

मेरे पास श्री पी.के.जैन, पी.के.ट्रेवल्स, जैन टेम्पल रोड, डीमापुर-797112, नागालैण्ड (फोन 03862-231619, फैक्स-03862-225532) द्वारा प्रकाशित एवं प्रेषित एक 40 पृष्ठीय पुस्तिका आयी है, जिसका शीर्षक है 'दिगम्बर जैन धर्म में और कितने पन्थ?' इसमें डीमापुर में विराजमान एक दिगम्बर-जैनाचार्य की आगमप्रतिकूल प्रवृत्तियों पर गहरा क्षोभ व्यक्त किया गया है और उससे ज्ञात होता है कि वहाँ के जिनशासनभक्त प्रबुद्ध वर्ग ने आचार्य जी की उक्त प्रवृत्तियों के विरोध में सशक्त आवाज उठायी है। इस वर्ग में स्थानीय विद्वान् पं० उत्तमचन्द्र जी शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य एवं पं० महेश जी शास्त्री भी सम्मिलित हैं और इस वर्ग के अभियान को प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी, पूर्व सम्पादक- 'जैन गजट', पं० रतनलाल जी बैनाड़ा, आगरा, श्री कपूरचन्द्र जी पाटनी, सम्पादक- 'जैनगजट' आदि विद्वानों एवं बहुसंख्यक श्रेष्ठिसमुदाय ने समर्थन दिया है। यह एक शुभ लक्षण है। बहुत दिनों बाद विद्वद्गर्ग एवं श्रावकवर्ग जागा है, और इनके मन में जैनधर्म को नष्ट होने से बचाने की चिन्ता व्यापी है, जिसके फलस्वरूप इन्होंने जिनशासन को कलंकित कर उसकी अन्त्येष्टि के लिए प्रयत्नशील तत्त्वों के विरोध में मोर्चा खोल लिया है।

उक्त पुस्तिका में उपर्युक्त आचार्य महोदय की जिनागमविरोधी अनेक प्रवृत्तियों का वर्णन किया है, किन्तु मैं यहाँ उनकी एक ही प्रवृत्ति की चर्चा करूँगा। पुस्तिका में कहा गया है कि "उक्त आचार्य जी और उनके शिष्यों ने

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।

मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥

इस परम्परागत मंगलाचरण से 'कुन्दकुन्दाद्यो' पाठ हटाकर उसके स्थान में 'पुष्पदन्ताद्यो' पाठ रख दिया है और इस परिवर्तित रूप में ही वे मंगलचारण करते हैं।" यह कथन बिलकुल सत्य है। बहुत दिनों से आचार्य कुन्दकुन्द को बहिष्कृत करने का यह प्रयास चल रहा है। इसका औचित्य सिद्ध करने के लिए उन आचार्य जी और उनके शिष्यों ने आचार्य कुन्दकुन्द पर घृणित आक्षेप किये हैं। एक आक्षेप का उल्लेख करते हुए शोधादर्श के ख्यातनामा भूतपूर्व सम्पादक स्व० श्री अजितप्रसाद जी जैन अपने सम्पादकीय में लिखते हैं-

"श्री दिगम्बर जैन मंदिर जी के प्रांगण में पूज्य आचार्य श्री पुष्पदन्तसागर महाराज के परमप्रिय शिष्य पूज्य मुनि श्री सौरभसागर महाराज का प्रवचन था। मुनिश्री ने प्रवचन प्रारम्भ करने के पूर्व मंगलश्लोक का वाचन इस प्रकार किया-

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।

मङ्गलं पुष्पदन्ताद्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥

"धर्मचर्चा के समय हमने मुनिश्री से परम्परागत मंगलश्लोक में उपर्युक्त संशोधन करने के विषय में जिज्ञासा की, तो उनका उत्तर था कि "यह श्लोक किसी प्राचीन आचार्यकृत नहीं है। यह तो दिगम्बरों ने वैष्णवों द्वारा प्रयुक्त मंगलश्लोक (मङ्गलं भगवान् विष्णु, मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो---) या श्वेताम्बरों के द्वारा अपनाये गये मंगलश्लोक (--- मङ्गलं स्थूलभद्राद्यो---) की नकल में गढ़ लिया है। कुन्दकुन्द तो एकान्तवादी थे---। यदि हम अपने गुरुवर्य से, जिन्होंने हमें उँगली पकड़कर चलना सिखाया, सबके मंगल की कामना करते हैं, तो इसमें बुराई क्या है?" (शोधादर्श-48/नवम्बर 2002 ई०/पृष्ठ 11-12)।

आचार्य कुन्दकुन्द पर एकांतवादी होने का आक्षेप छोटे मुँह बड़ी बात है। यह उन्हें एकांतमिथ्यादृष्टि कहने का दुःसाहस है। यह समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय जैसे आर्षग्रंथों को मिथ्यादृष्टि द्वारा रचित कुशास्त्र घोषित करने की जिनागमविरोधी चेष्टा है। यह कुन्दकुन्दान्वय में दीक्षित उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंदेव आदि अनेक आचार्यों को एकांत-मिथ्यादृष्टि गुरु के अन्वय में दीक्षित बतलाने का प्रयास है। यह दो हजार वर्षों से कुन्दकुन्दाम्नाय में प्रतिष्ठित होती आ रही जिनप्रतिमाओं को मिथ्यादृष्टि-आम्नाय में प्रतिष्ठित साबित करने की कोशिश है। इसका प्रयोजन है आचार्य कुन्दकुन्द को मंगलरूप में स्मरण करने के अयोग्य घोषित कर, उनके स्थान में अपने गुरु को मंगलरूप में प्रतिष्ठापित करने के प्रयास का औचित्य सिद्ध करना।

आचार्य कुन्दकुन्द पर दूसरा आक्षेप डीमापुर (नागालैण्ड) में विराजमान स्वयं उन गुरु महोदय ने किया है। मुझे 29 जनवरी 2007 को डीमापुर से पूर्वोक्त श्री पी. के. जैन (पी. के. ट्रेवल्स) का फैंक्स (0386-225532) द्वारा भेजा गया चार पृष्ठों का समाचार प्राप्त हुआ है। उसमें 23 जनवरी, 2007 को डीमापुर में आचार्य श्री पुष्पदन्तसागर जी के सान्निध्य में आचार्य श्री कुन्दकुन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व पर सम्पन्न संगोष्ठी का विवरण है। विवरण में आचार्य श्री पुष्पदन्तसागर जी के वक्तव्य को उद्धृत करते हुए कहा गया है- “उन्होंने आगे बोलते हुए कहा कि जब पंचमकाल में ऋद्धि उत्पन्न होती ही नहीं है, तो फिर कुन्दकुन्द को कैसे हो सकती है? उन्होंने कहा यह सब मनगढ़न्त बातें हैं, मैं किसी भी विद्वान् को प्रमाण नहीं मानता, मैं मात्र आचार्यों को प्रमाण मानता हूँ। और कुन्दकुन्द के ऋद्धि होने की बात, उनके विदेह जाने की बात कांजीपंथियों की फैलाई हुई है।--- आचार्य श्री ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए, आचार्य देशभूषण जी महाराज द्वारा लिखित णमोकारग्रंथ और जिनेन्द्रवर्णी के द्वारा लिखे गये जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश का हवाला देते हुए कहा कि वे इन ग्रंथों के नाम तो बता रहे हैं, लेकिन वे न तो भागसंख्या ही बतायेंगे और न ही पेजसंख्या। यदि आप विद्वान् हैं, तो स्वयं ही देख लें कि किस तरह से आचार्य जिनचन्द्र के विषय में जिनेन्द्रवर्णी ने लिखा है। मैं उस घटना का उल्लेख भी नहीं करना चाहता। यदि मैंने कुन्दकुन्द के गुरु के विषय में सच बताया, तो आप कुन्दकुन्द को नमस्कार करना छोड़ देंगे।”

आचार्य श्री पुष्पदन्तसागर जी के इन शब्दों से उनका यह अभिप्राय प्रकट होता है कि जिनेन्द्रवर्णी जी ने कुन्दकुन्द के गुरु जिनचन्द्र के विषय में जो लिखा है वह सत्य है और उस सत्य के कारण कुन्दकुन्द नमस्कार के योग्य नहीं है। आचार्य जी ने यह बात उन विद्वानों को सम्बोधित करते हुए कही है, जिन्होंने कुन्दकुन्द के प्रति अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा प्रकट करते हुए मंगलाचरण से उनका नाम हटाये जाने को अनुचित कहा था। इससे आचार्य जी का मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है। वे यह द्योतित करना चाहते हैं कि कुन्दकुन्द के गुरु के विषय में जिस सच का उन्होंने संकेत किया है, वह इतना गंभीर है कि उसे जानने के बाद अज्ञानी भले ही कुन्दकुन्द को नमस्कार के योग्य मानते रहें, किन्तु ज्ञानी कदापि नहीं मान सकते। आचार्य जी ने संगोष्ठी में कुन्दकुन्द के प्रति अश्रद्धा जगानेवाली यह अप्रासंगिक बात क्यों उठायी? इस प्रश्न पर विचार करने से रहस्य समझ में आ जाता है। वह यह कि इस प्रकार विद्वानों के मन में कुन्दकुन्द के प्रति अश्रद्धा पैदा कर, वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उन्होंने मंगलाचरण से कुन्दकुन्द का नाम हटाकर उचित ही किया है।

### सच की छानबीन- आवश्यक

कुन्दकुन्द के गुरु के विषय में वह सच क्या है और क्या वह सचमुच में सच है? इसकी जानकारी और छानबीन करना आवश्यक है। क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी जी ने ‘जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश’ के प्रथम भाग (परिशिष्ट 4) में पृष्ठ 490 पर लिखा है-

“माघनन्दी के पश्चात् कुन्दकुन्द के गुरु आचार्य जिनचन्द्र का नाम आता है। --- श्वेताम्बरसंघ के आदिप्रवर्तक का नाम भी जिनचन्द्र कहा गया है। --- इस विषय में यहाँ विचारकों के समक्ष एक क्लिष्ट कल्पना प्रस्तुत

करता हूँ, जिसकी युक्तता अथवा अयुक्तता के विषय में मुझे कुछ भी आग्रह नहीं है। बहुत संभव है कि ये दोनों एक ही व्यक्ति हों। भद्रबाहु-प्रथम के काल में मूलसंघ का जो भाग दक्षिण की ओर न जाकर उज्जैनी में रुक गया था, उसने परिस्थिति से बाध्य होकर अर्धफालकसंघ का रूप धारण कर लिया था, जो वि० सं० 136 तक उसी रूप में विचरण करता रहा।--- हो सकता है कि वि० सं० 136 में इस संघ के आचार्य शान्त्याचार्य हों और उनके शिष्य जिनचन्द्र हों। शान्त्याचार्य ने जब संघ से प्रायश्चित्तपूर्वक अपना स्थितीकरण करने की बात कही, तो इन्होंने कुछ षड्यन्त्र करके उन्हें मरवा दिया और बेधडुक होकर अपना शैथिल्यपोषण करने के लिए सांगोपांग श्वेताम्बरसंघ की नींव डाल दी। यद्यपि उस समय वासना से प्रेरित होकर इन्होंने यह घोर अनर्थ कर डाला, तथापि ब्रह्महत्या का यह महापातक इनके अन्तष्करण को भीतर ही भीतर जलाने लगा। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब वह शान्त नहीं हुआ, तो ये दिगम्बरसंघ की शरण में आये, क्योंकि अपनी ज्ञानगरिमा तथा तपश्चरण के कारण उस समय आचार्य माघनन्दी का तेज दिशाओं-विदिशाओं में व्याप्त हो रहा था। गुरु के चरणों में लोटकर आत्मग्लानि से प्रेरित हो, आपने अपने दुष्कृत्य की घोर भर्त्सना की और खुले हृदय से आलोचना करके उनसे प्रायश्चित्त देने के लिए प्रार्थना की। मित्र-शत्रु-समचित्त, परमोपकारी गुरु ने उनके हृदय को शुद्ध हुआ देखकर उन्हें समुचित प्रायश्चित्त दिया और उन्हें पुनः दीक्षा देकर अपने संघ में सम्मिलित कर लिया। 5-6 वर्ष पर्यन्त उग्र तपश्चरण करके जिनचन्द्र ने अपनी समस्त कालिमाएँ धो डालीं और जिनेन्द्र के समीचीन शासन में चन्द्र की भाँति उद्योत फैलाने लगे। सकल संघ के साथ अपने गुरु के भी वे विश्वासपात्र बन गये, बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार कि ब्राह्मण इन्द्रभूति भगवान् महावीर के। गुरुप्रवर माघनन्दी ने स्वयं अपने हाथों से वी० नि० 614 में उन्हें संघ के पट्ट पर आसीन कर दिया और उनकी छत्रछाया में सकलसंघ ज्ञान तथा चारित्र में उन्नत होने लगा। इस घटना के 8-9 वर्ष पश्चात् वी० नि० 623 (ई० सन् 96) में कुन्दकुन्द ने उनसे दीक्षा धारण की।

“दिगम्बरसंघ के आचार्य बन जाने के कारण अवश्य ही इनके ऊपर श्वेताम्बरसंघ की ओर से कुछ आपत्तियाँ आयी होंगी, जिन्हें इन्होंने समता से सहन किया। परन्तु शिष्य होने के नाते कुन्दकुन्द उन्हें सहन न कर सके और आचार्यपद पर प्रतिष्ठत होते ही श्वेताम्बरसंघ के इस अनीतिपूर्ण दुर्व्यवहार को रोकने तथा अपने संघ की रक्षा करने के लिए उन्होंने उसके साथ मुँह-दर-मुँह होकर शास्त्रार्थ किया। कुन्दकुन्द के तप तथा तेज के समक्ष वह संघ टिक न सका और लज्जा तथा भयवश उसे अपनी प्रवृत्तियाँ रोक लेनी पड़ीं।” (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश/भाग 1/ परिशिष्ट 4 / जिनचन्द्र / पृष्ठ 490)।

### अयुक्तियुक्त कल्पना

शुल्लक जिनेन्द्रवर्णी जी ने स्वयं इसे अपनी एक क्लिष्ट (संगत प्रतीत न होनेवाली) कल्पना कहा है। निश्चित ही यह एक अयुक्तियुक्त कल्पना है। यह निम्नलिखित हेतुओं से सिद्ध होता है-

क- शान्त्याचार्य के शिष्य जिनचन्द्र थे और उन्होंने शान्त्याचार्य का वध कर श्वेताम्बरसंघ की स्थापना की थी, यह 'भावसंग्रह' (प्राकृत) के कर्ता दिगम्बर आचार्य देवसेन (933-955 ई०) की कल्पना है। श्वेताम्बरमत में श्वेताम्बरसम्प्रदाय का प्रवर्तक किसी जिनचन्द्र को नहीं माना गया है। अन्तिम अनुबद्ध केवली जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् दिगम्बरों और श्वेताम्बरों की आचार्यपरम्परा भिन्न-भिन्न हो जाती है। जहाँ दिगम्बरपरम्परा में अन्तिम अनुबद्ध केवली जम्बूस्वामी के बाद प्रथम श्रुतकेवली विष्णु का नाम है, वहाँ श्वेताम्बरपरम्परा में आचार्य प्रभव का उल्लेख है। (श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री : जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा/पृष्ठ 562)। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य प्रभव श्वेताम्बरसंघ के संस्थापक थे। किन्तु अन्तिमश्रुत केवली भद्रबाहु (वीर नि० सं० 162) के समकालीन आचार्य स्थूलभद्र को श्वेताम्बरपरम्परा में अन्त्यन्त महत्त्व दिया गया है और श्वेताम्बर, विद्वान् डॉ० सागरमल जी ने लिखा है कि “दक्षिण का अचेल निर्ग्रन्थसंघ भद्रबाहु की परम्परा से और उत्तर का सचेल निर्ग्रन्थसंघ

स्थूलभद्र की परम्परा से विकसित हुआ।” (जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा/पृ.29)। इस श्वेताम्बरीय मान्यता से क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी जी की यह कल्पना निरस्त हो जाती है कि कुन्दकुन्द के गुरु जिनचन्द्र पूर्व में श्वेताम्बरसंघ के संस्थापक थे।

ख- श्वेताम्बरसंघ के संस्थापक आचार्य स्थूलभद्र अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के समकालीन होने से ईसा-पूर्व चौथी शताब्दी (वीर नि० सं० 162 = ईसापूर्व 365) में हुए थे, जब कि आचार्य देवसेन ने शान्त्याचार्य का वधकर जिनचन्द्र द्वारा श्वेताम्बरसंघ स्थापित किये जाने की घटना वि० सं० 136 (ई० सन् 79) में घटी बतलायी है। इस कालवैषम्य से भी क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी की कल्पना अयुक्तियुक्त सिद्ध होती है।

ग- दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं का साहित्य इस बात का उल्लेख करता है कि अन्तिम अनुबद्ध केवली जम्बूस्वामी के निर्वाण (वीर नि० सं० 62 = ईसा पूर्व 465) के पश्चात् दोनों संघों की आचार्यपरम्परा भिन्न-भिन्न हो गयी थी। यह इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है कि श्वेताम्बरसंघ का उदय ईसापूर्व 465 में हो गया था। श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय (ईसापूर्व चौथी शताब्दी) में द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के फलस्वरूप निर्ग्रन्थसंघ का जो दूसरा विभाजन हुआ था, उससे श्वेताम्बरसंघ नहीं, अपितु अर्धफालकसंघ अस्तित्व में आया था, जो आगे चलकर ईसा की द्वितीय शताब्दी में श्वेताम्बरसंघ में विलीन हो गया। इस आगमप्रमाण से भी क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी जी की कल्पना अत्यन्त अप्रामाणिक सिद्ध होती है।

घ- यह मान्यता भी अप्रामाणिक है कि अर्धफालकसंघ वि० सं० 136 (ई० सन् 79) में श्वेताम्बरसम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित हो गया था, क्योंकि मथुरा के कंकालीटीले की खुदाई में जो जिनप्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं, वे प्रथम शताब्दी ई० की हैं, जो अर्धफालक सम्प्रदाय के साधुओं द्वारा प्रतिष्ठापित की गयी थीं। इससे सिद्ध होता है कि अर्धफालकसम्प्रदाय ईसा की प्रथम शती तक श्वेताम्बरसंघ में विलीन नहीं हुआ था। इस प्रमाण से भी क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी की यह मान्यता निरस्त हो जाती है कि जिनचन्द्र ने वि० सं० 136 (ई० सन् 79) में श्वेताम्बरसंघ की स्थापना की थी।

ङ- क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी ने भावसंग्रह (प्राकृत) के अनुसार जिनचन्द्र को वि० सं० 136 (ई० सन् 79) में श्वेताम्बरसंघ का संस्थापक माना है, और कुछ वर्षों बाद उनके दिगम्बरसंघ में लौटने और ई० सन् 96 में उनके द्वारा कुन्दकुन्द को दीक्षा दिये जाने की कल्पना की है। किन्तु 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' ( Vol.XX ) की नन्दिसंघीय पट्टावली में बतलाया गया है कि कुन्दकुन्द का जन्म ईसा से 52 वर्ष पूर्व हुआ था और ईसा से 8 वर्ष पूर्व 44 वर्ष की आयु में उन्होंने मुनिदीक्षा ग्रहण की थी। इस प्रमाण के अनुसार कुन्दकुन्द की मुनिदीक्षा क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी जी के कल्पित समय से 104 वर्ष पहले ही हो गयी थी, अतः क्षुल्लक जी का मत प्रमाणविरुद्ध है।

च- आचार्य जिनचन्द्र कुन्दकुन्द के गुरु थे और 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' ( Vol.XX ) में प्रकाशित पट्टावली में उनका पट्टारोहणकाल कुन्दकुन्द के पट्टारोहणकाल (वि० सं० 49 = ईसापूर्व 8) से 9 वर्ष पूर्व (वि० सं० 40= ईसापूर्व 17 में) बतलाया गया है। इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी ने वि० सं० 136 अर्थात् ई० सन् 79 में जिस जिनचन्द्र को शान्त्याचार्य का वध कर श्वेताम्बरसंघ का संस्थापक तथा ई० सन् 96 में कुन्दकुन्द का दीक्षागुरु माना है, वह उनका दीक्षागुरु हो ही नहीं सकता। सच तो यह है कि उसका अस्तित्व ही नहीं था, क्योंकि 'भद्रबाहुचरित' के कर्ता रत्ननन्दी ने शान्त्याचार्य के स्थान में स्थूलाचार्य के वध की बात कही है, और किसी जिनचन्द्र को वधकर्ता न बतलाकर सभी विरोधी मुनियों को वधकर्ता बतलाया है। इसके अतिरिक्त वि० सं० 136 में श्वेताम्बरमत की उत्पत्ति हुई ही नहीं थी, वह जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् अर्थात् ईसापूर्व 465 में ही हो गयी थी तथा अर्धफालकसम्प्रदाय का भी श्वेताम्बरीकरण वि० सं० 136 अर्थात् 79 ई० में न होकर उसके सौ-पचास वर्ष बाद हुआ था।

इन तथ्यों से सिद्ध है कि, न तो किसी जिनचन्द्र मुनि ने अपने गुरु शान्त्याचार्य की हत्या कर श्वेताम्बरसंघ की स्थापना की थी, न ही वे बाद में दिगम्बरसंघ में आये थे। अतः उनके कुन्दकुन्द के गुरु होने का प्रश्न ही नहीं उठता। फलस्वरूप जिनेन्द्रवर्णी जी की कल्पना सर्वथा मिथ्या है। इसलिए आचार्य श्री पुष्पदन्तसागर जी ने कुन्दकुन्द के गुरु के विषय में जिनेन्द्रवर्णी जी के जिस काल्पनिक मत को सच मान रखा है, वह सच है ही नहीं। अतः उसे पढ़-सुनकर कोई भी कुन्दकुन्दभक्त केवल जिनेन्द्रवर्णी के कहने से सच नहीं मान लेगा, उसकी छानबीन करेगा। और जब उपर्युक्त तथ्य ('क' से लेकर 'च' तक) उसकी दृष्टि में आयेंगे, तब उसकी श्रद्धा को आँच नहीं आयेगी और वह कुन्दकुन्द को नमस्कार करना नहीं छोड़ेगा तथा मंगलाचरण में से उनका नाम हटाये जाने को अनुचित बतलाता रहेगा।

और जो यह तर्क दिया जा रहा है कि मंगलाचरण से आचार्य कुन्दकुन्द का नाम हटाकर उनकी जगह षट्खण्डागम के रचयिता आचार्य पुष्पदन्त का नाम रखा गया है, और वह इसलिए कि वे कुन्दकुन्द से पूर्ववर्ती हैं, वह उचित नहीं है। क्योंकि पुष्पदन्त से भी पूर्ववर्ती उनके गुरु आचार्य धरसेन हैं और धरसेन से भी पूर्ववर्ती 'कसायपाहुड' के कर्ता आचार्य गुणधर हैं, अतः पूर्ववर्ती होने के तर्क से आचार्य कुन्दकुन्द के स्थान में आचार्य गुणधर का नाम रखा जाना उचित सिद्ध होता है। किन्तु ऐसा नहीं किया गया, इससे सिद्ध है कि पूर्ववर्ती होने के कारण पुष्पदन्त का नाम कुन्दकुन्द के स्थान में नहीं रखा गया। इसलिए कुन्दकुन्द के स्थान में रखे गये पुष्पदन्त, वे पुष्पदन्त नहीं हैं, जिन्होंने षट्खण्डागम की रचना की थी और कुन्दकुन्द से पूर्ववर्ती थे, अपितु कोई दूसरे हैं। उनकी ओर संकेत आचार्य कुन्दकुन्द को एकांतवादी कहनेवाले मुनिश्री ने कर दिया है।

इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द पर दो आक्षेप किये गये हैं- 1. एकांतवादी होने का एवं 2. गुरुघाती आचार्य के शिष्य होने का, ताकि उन्हें नमस्कार के अयोग्य सिद्ध कर मंगलाचरण से उनका नाम हटाने का औचित्य सिद्ध किया जा सके और उनके स्थान में किसी और को मंगलरूप में प्रसिद्ध किया जा सके। समस्त विद्वानों, पत्रकारों और जिनशासन-भक्त श्रावकों का कर्तव्य है कि जिनशासन को रसातल में जाने से बचानेवाले, दिगम्बरजैन-परम्परा के अद्वितीय स्तम्भ, आचार्य कुन्दकुन्द पर किये जा रहे इन आक्षेपों की, चुप रहकर अनुमोदना न करें, खुलकर विरोध करें।

रतनचन्द्र जैन

## कल्पना जैन को पी.एच.डी.

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर ने छतरपुर निवासी श्रीमती कल्पना जैन को 'जैन दर्शन एवं योग दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन' (पतंजलि योग सूत्र एवं ज्ञानार्णव के विशेष संदर्भ में) विषय पर पी.एच.डी की उपाधि से विभूषित किया है। डॉ. कल्पना जैन ने अपना शोधप्रबन्ध रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र एवं योग विभाग की विभागाध्यक्षा डॉ. सुश्री छाया राय के कुशल मार्गदर्शन में प्रस्तुत किया था। उल्लेखनीय है कि डॉ. कल्पना जैन छतरपुर के प्रख्यात योगगुरु योगाचार्य डॉ. फूलचन्द्र जैन (योगिराज) संचालक-श्री स्याद्वाद योग संस्थान छतरपुर की सुपुत्री हैं।

प्रेषक - प्रो. डॉ. सुमति प्रकाश जैन  
महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर ( म.प्र. )



# जीवननिर्वाह नहीं, जीवननिर्माण

आचार्य श्री विद्यासागर जी

‘जीवननिर्वाह की नहीं जीवननिर्माण की बात सर्वोपरि होनी चाहिए। आत्म-कल्याण की बात सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की पहचान करने पर ही हो सकती है, इसके बिना नहीं। इस पहचान के बाद प्रयोजनभूत तत्त्व को जानना या मानना चाहिए। यह कार्य आत्मकल्याण हेतु पर्याप्त होगा।’ उक्त धर्मोपदेश दिगम्बर जैनाचार्य संत शिरोमणि श्री विद्यासागर जी महाराज ने श्री दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र तारंगा में ‘श्रुत पंचमी’ दिवस पर आयोजित विशेष धर्म सभा को सम्बोधित करते हुए प्रदान किये।

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने धर्मोपदेश का प्रारम्भ मंगलाचरण से करते हुए कहा-

सार-सार दे शारदे! बनूँ विशारद धीर।

सहार देकर तार दे, उतार दे उस तीर ॥

(सूर्योदयशतक/५)

सरस्वती, शारदा या जिनवाणी तीनों एक ही हैं, उनको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। वह संसार में जो सार-सार है वह हमें प्रदान करे। सार-सार को हम ले लें और जो असार शेष रह जाता है उसकी हमें चिंता नहीं है। सरस्वती, जिनवाणी से सार की अक्षर यानी क्षरणरहित की माँग करनी चाहिए, अक्षरों की नहीं। ‘अक्षर’ यानी ‘न क्षरं एति इति अक्षरः’ अर्थात् जो नाश को प्राप्त नहीं होता। सुननेवाले अक्षर तो एक ही बार काम आते हैं, उन्हें दुबारा श्रवण नहीं कर सकते। टेपरिकार्ड की बात अलग है। शब्दों को सुन सकते हैं, परंतु उन्हें पढ़ नहीं सकते। जो पढ़ते हैं, उन्हें सुन नहीं सकते, किंतु जो सुनते हैं, उसे पढ़-सुन भी सकते हैं तथा अन्य को सुना भी सकते हैं।

भगवान् की देशना से देशनालब्धि की प्राप्ति होती है, वह गुरुदेशना से भी प्राप्त होती है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान में जो भी सारभूत है, वह गुरुदेशना से प्राप्त है दुनिया में क्या है, क्या-क्या हुआ या होगा, यह सब कुछ दर्पण की भाँति केवलज्ञान में आता है। परन्तु जो-जो उनके ज्ञान में आया है, वह कहा नहीं गया। दुनिया में अनन्तान्त पदार्थ हैं, उनमें बहुभाग अकथ्य है। अकथ्य यानी जिसका कथन नहीं किया जा सके। अकथ्य एवं अवक्तव्य में कदाचित् अंतर है। कथन में आने योग्य होने पर भी एक साथ दो धर्मों को नहीं कह पाना अवक्तव्य है, किंतु कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं

जो प्रभु के द्वारा जाने जाते हुए भी कथन के अयोग्य यानी अकथ्यभूत हैं। भगवान् की दिव्यध्वनि भी सारभूत है, बहुभाग तो अकथ्य है, किंतु कुछ लोगों का छद्मस्थ दशा में छाती ठोकना गलत है कि पदार्थ ऐसा ही है। गोम्मटसार जीवकाण्ड तथा राजवार्तिक आदि ग्रंथों में उल्लेख आता है-

पणवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं ।

पणवणिज्जाणं पुण अणंतभागो दु सुदणिवद्धो ॥

(गोम्मट. जीव. /३३४)

अनंतान्त पदार्थ, वस्तु के गुणधर्म जानने में आते हैं पर वे सब कहे नहीं जा सकते, इसलिये अकथ्य माने जाते हैं। जाननेवाला सारा का सारा कथन में नहीं आता, उसका बहुभाग तो अकथ्य है। यथा सौ में से निन्यानवे तो अकथ्य हैं, किंतु वह जानते अवश्य हैं, जिसे मात्र केवलज्ञान से ही जान सकते हैं। जो है, उसके बारे में पूर्णतः कहा नहीं जा सकता, मात्र एक प्रतिशत ही कहा जाता है। कथ्यभूत को भी अनंतकेवली भी अनंतकाल तक पूर्ण वर्णन नहीं कर सकते। जो एक भाग कथ्यभूत है उसका भी अनंतभाग कथन में आता है और गणधर परमेष्ठी ने उसका अनंतवाँ भाग अपने कर्णों से सुनकर धारण किया।

वाणी सुनी जाती है, पढ़ी नहीं जाती। दिव्यध्वनि को सुनकर अनंतवाँ भाग रूप द्वादशांग की रचना गणधर परमेष्ठी करते हैं। जो सुना वह सारा का सारा लिखा नहीं जा सकता। गणधर परमेष्ठी भी दिव्यध्वनि को पूर्ण टेप नहीं कर सके। आज तो द्वादशांग भी पूर्ण उपलब्ध नहीं है। श्रुतधर एवं सारस्वत आचार्य भी आज नहीं हैं। द्वादशांग या द्वादश में से कुछ कम करते-करते अन्य अंग या उनके अंशों के भी ज्ञाता आचार्य नहीं रहे। जैसे सामान्य और स्पेशलिस्ट डॉक्टर में अंतर होता है, वैसे ही अंग और पूर्वगत विषयों के ज्ञाताओं में अंतर है। द्वादशांग के पाठी भी आज तो हैं नहीं, उनसे हमारा काम भी नहीं चलेगा। हमारा तो अल्पज्ञान से ही काम होगा। आज पूर्ण एक अंग का भी ज्ञान नहीं है। द्वादशांग का थोड़ा सा ज्ञान शेष रह पाया है। इतना अवश्य है कि अध्यात्म का कुछ ज्ञान आज विद्यमान है, जो सारभूत है, सार-सार है। अनंत बहुभाग तो नहीं, अपितु एक भाग में भी जो कुछ उपलब्ध है, उसमें हर व्यक्ति यही दावा ठोकता है कि मैं जो कह रहा हूँ, वह सही है। ऐसा कहना या मानना ही गलत है।

तर्क या युक्ति के बलबूते पर कहना अलग बात है, परन्तु जो विषय कहा ही नहीं गया हो, उसे भी निर्णीत कर देना गलत है।

आचार्य समन्तभद्रस्वामी सारस्वत आचार्य की कोटि में आते हैं। वे कला, उक्ति, न्याय आदि विद्याओं में पारंगत थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा को अभिव्यक्ति दी थी। वह उनका अभिमान नहीं था, अपितु विद्या के प्रति गौरव था। उसके बिना सामने वाले (राजा आदिक) को दिशाबोध ही प्राप्त नहीं होता। उन्होंने जहाँ न्याय ग्रंथों में भगवान की परीक्षा की है वहाँ रत्नकरण्डक श्रावकाचार में कहा है कि सर्वप्रथम भगवान् को मानो। भगवान् को मानने के लिये वो सर्वज्ञ है, या नहीं, यह पहले अनिवार्य नहीं है। सर्वज्ञ ने यह जाना या नहीं, यह भी अनिवार्य नहीं, गुण-द्रव्य-पर्याय उनकी पहचान नहीं बनाई अपितु सर्वज्ञ को वीतरागी होना चाहिये, यह लक्षण कहा है। भगवान् कैसे हों? यह पहचान कराकर रत्नकरण्डक श्रावकाचार में ही उन्होंने शास्त्र की पहचान कराई है। कुपथ का निरूपण नहीं बल्कि कुपथ का विनाश करने वाले एवं सबका हित करने वाला ही शास्त्र कहलाता है। इस ग्रंथ में उन्होंने भगवान् की, गुरु की एवं शास्त्र की पहचान नहीं अपितु उनके वास्तविक स्वरूप के श्रद्धान करने को सम्यग्दर्शन कहा है। मात्र आत्मानुभूति करने, होने को सम्यग्दर्शन नहीं कहा।

स्थापना निक्षेप से स्थित भगवान् के बिम्ब, मूर्ति में हितोपदेशीपना, एवं सर्वज्ञत्व भले ही देखने में नहीं आते। उनके बिम्ब को दिन में तीन बार भी देखें पर जैसे शब्द देखने में नहीं अपितु सुनने में ही आते हैं। उसी प्रकार उनका सर्वज्ञत्वपन देखने में नहीं अपितु शास्त्र श्रवण से ही समझ में आता है। 'पूज्यवाद स्वामी' ने तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ पर अपनी टीका 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रंथ में कहा है कि दिगम्बर वेश धारक आचार्य मुख से कहे बिना ही शिष्यों के बीच में बैठे हुये भी दिगम्बरत्व के माध्यम से अथवा यथाजात मुद्रा से मानो वीतरागता का साक्षात् पाठ कह रहे थे। भगवान् बैठे हों, या खड़े हों, मुख से बोले बिना ही उनकी मुद्रा सब कुछ कह रही होती है। उसे आँखों से सुन, देख सकते हैं, किन्तु कानों से नहीं। उस भाषा को सुनने में कान नहीं बल्कि आँखें ही समर्थ हैं। जैसे वक्ता की मुखमुद्रा को देखे बिना सुनते हुये कभी-कभी सही भाव नहीं समझ पाते, जबकि बिना सुने ही मुख मुद्रा से अथवा उनकी बाह्य प्रवृत्ति / हाथ आदि के संकेत को देख करके सब कुछ समझा जा सकता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने 'अष्टपाहुड' में बहुत महत्त्वपूर्ण

बात कही है-

हिंसारहिए धम्मे अट्टारहदोसवज्जिए देवे।

णिग्गंथे पव्वयणे सहहणं होइ सम्मत्तं ॥

(मोक्षपाहुड-१०)

हिंसा से रहित धर्म में, १८ दोषों से रहित देव, भगवान् में तथा निर्ग्रन्थ के द्वारा कथित प्रवचन यानी जिनवाणी पर श्रद्धान रखने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। इसमें कहा गया है कि जो १८ दोषों से रहित हैं, वे ही भगवान् हैं। सर्वज्ञत्व हमारी चक्षु, आँख का विषय नहीं है। ४६ गुणों से युक्त होकर भी अर्हन्त, तीर्थंकर भगवान् समवसरण में विराजमान होते हुये भी बाह्य लक्षणों से नहीं अपितु निर्विकार बालकवत् या यथाजात लिङ्गयुक्त, १८ दोषों से रहित होने से वीतरागता के माध्यम से हम उन्हें पहचान लेते हैं एवं अपनी श्रद्धा का विषय बना लेते हैं। क्षुधा, तृषा, रोग, वृद्धावस्था आदि १८ दोष नहीं होने से उनके शरीर में व ललाट में झुर्रियाँ तथा मुख में मूँछ, दाढ़ी आदि नहीं आती। इसलिये वे भीतर के समान बाहर भी सुन्दर लगते हैं। वे देखने में वृद्ध से नहीं बल्कि किशोर लगते हैं। उनका ज्ञान एवं चारित्र वृद्ध एवं प्रौढ़ होता है। परन्तु शरीर बालकवत् होता है। चिंता विस्मय, आरम्भ परिग्रह, भय, अस्त्र, शस्त्र आदि से रहित ही भगवान् होते हैं। उनके दर्शन करने से अनादिकालीन मिथ्यात्व भी क्षणभर में समाप्त हो जाता है। अनन्तकालीन धाराप्रवाह रूप से आ रहे कर्म के क्षय का कारण उनकी वीतरागता की एक झलक मात्र है, न कि सर्वज्ञत्व। दर्शन करते ही सर्वप्रथम वीतरागता ही उनमें दृष्टिगत होती है, सर्वज्ञता की खोज बाद में होती, की जाती है। वीतरागता जानने, देखने की चीज है जबकि सर्वज्ञता मानने रूप। यह पढ़ने, देखने रूप है वह परखने की। ध्यान रहे भगवान् को नहीं उनकी प्रतिमा को परखा जा सकता है।

क्षुत्पिपासाजरातंकजनमांतकभयस्मयाः।

न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार/६)

आँखों से वीतरागता देख सकते हैं, सर्वज्ञता नहीं। यह तो मान्यता पर ही आधारित है। दोष-आवरण के अभाव के पहले मोह का अभाव भी आवश्यक है। जिनेन्द्र-स्तुति में भी आप पढ़ते हैं:-

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन।

सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि-रज-रहस विहीन ॥

अरि यानी मोहनीय कर्म, रज आर्थात् ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण कर्म तथा रहस यानी अंतराय कर्म, इन सभी से

रहित होने के कारण जिनेन्द्र देव नमस्कृत होते हैं। ऐसे जिनेन्द्र के बिम्ब को देखकर मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्व या अनंतकालीन आर्त, पीड़ा रूप दशा भी उपशमित हो जाती है। मिथ्यादृष्टि की दृष्टि में भी बिम्बगत वीतरागता आ सकती है, जबकि सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में भी सर्वज्ञत्व देखने में नहीं आता। ध्यान रखो, सर्वप्रथम जिन, जिनेन्द्र को मानो, जिनवाणी को मानो, फिर जिन के अनुरूप चलनेवाले गुरुओं को भी मानो। इसी से आपका भला, कल्याण होगा। देव-गुरु-शास्त्र की पहचान, परख पहले बताई है। इन्हीं के माध्यम से हमारा कल्याण होने वाला है।

धवला आदि महान् ग्रंथों में कहा गया है कि 'भाणिदब्ब' अर्थात् विषय को शिष्यों के मुख से कहलवाना चाहिए। वहाँ भाणिदब्ब नहीं कहा। उच्चारित करना चाहिए, यह नहीं कहा। आजकल तो 'सेल्फ स्टडी' होने लगी है जो एस.टी.डी. जैसी हो गयी है। अपने आप पढ़ो, अपने अनुरूप अर्थ खोलो और बोलो। इतना ही नहीं आज तो स्वाध्याय भी व्यवसाय का रूप बन गया या बनता जा रहा है।

जब मैं आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के पास ब्रह्मचारी अवस्था में गया था तब देखता था कि उस समय कोई एकाध व्यक्ति ही प्रकाशन कर/करा पाता था। वह उस प्रकाशित ग्रन्थ/पुस्तक का मूल्य रखता था विनय, स्वाध्याय, आत्मचिंतन, मनन, आदर आदि। उन पर मूल्य के रूप में पैसा/रुपया नहीं लिखा जाता था। पर आज की दशा तो विचित्र है। इतना ही नहीं जब जिनवाणी भीतर से/भण्डार से बाहर शास्त्र की गद्दी पर लाई/विराजमान की जाती थी, तो उस समय सब को सचेत करने हेतु 'सावधान' कहा जाता था। उस समय 'ज्ञानवान' नहीं कहते, अपितु ज्ञान को सावधान करने, अभिमान एवं विषय-कषायों को छोड़ने के लिये विनय, श्रद्धा एवं आस्थावान होने के लिए संकेत किया जाता है।

पूर्व में कोई व्यक्ति यदि भक्तामर तत्त्वार्थसूत्र या जिनसहस्रनाम आदि को सुना देता तो सुननेवाला उसका महत्त्व समझते, यहाँ तक कि सुनानेवाले की भी विनय करते थे, परन्तु आज यह सब महत्त्व समाप्त सा हो गया/होता जा रहा है। आज तो जिनवाणी को, कीमत लेकर/लिखकर बांट रहे हैं, सर्वाधिकार सुरक्षित कर/करा रहे हैं। आगम में उल्लेख मिलता है कि जिनवाणी के माध्यम से आजीविका, व्यवसाय करना गलत है। जिनवाणी के माध्यम से जो व्यवसाय करता है वह सत्य का प्ररूपण नहीं कर सकता।

वेतन के चक्कर में रहनेवाला कभी चेतन के बारे में सही-सही बात नहीं कर सकता। जिनवाणी के श्रवण की कीमत धन नहीं या धन से नहीं आङ्गी जा सकती। किंतु आज ग्रन्थ में देखते हैं ग्रन्थ की कीमत देखकर ग्रन्थ का मूल्य निर्धारित करते, खरीदते हैं। इतना ही नहीं अब तो ग्रन्थ का मूल्य भी बदलता रहता है। संख्या के सामने एक शून्य और रखकर उसके मूल्य को विकासोन्मुख किया जाता है।

इसी प्रकार पहले मूर्तियों को खरीदते समय उनका मूल्य नहीं किया जाता था तब न्यौछावर होती थी। प्रतिष्ठा के पूर्व जयपुर आदि से प्रतिमा जी को लाने हेतु राशि भेंट की जाती थी। आज से १८-२० वर्ष पूर्व की बात है। कुण्डलपुर (दमोह, मध्यप्रदेश) के संभवतः प्रथम चातुर्मास (सन् १९७६) की बात होगी। उस समय शासन ने एक सूचना प्रसारित की थी। कि किसी भी धर्म/सम्प्रदाय से संबंधित जो भी सौ वर्ष से प्राचीन सामग्री, मूर्ति, पुस्तक, ग्रन्थ आदि सामग्री हो, उनका नाम, विस्तृत परिचय/विवरण तथा साथ में उसका वजन भी बताना आवश्यक था। समाज में चर्चा हुई कि सबका परिचय काल तथा फोटो तो दिया जा सकता है, परन्तु प्रतिमा जी को तोला नहीं जा सकता। भगवान् तो अतुल हैं अनमोल हैं, उन्हें तुला पर तोला नहीं जा सकता। यही सम्यग्दर्शन है, उनके प्रति आस्था एवं विनय की सूचना है। भगवान् की, गुरुओं की अथवा जिनवाणी रूपी शास्त्र की कोई कीमत नहीं होती। बिम्ब की प्रतिष्ठा होने के पश्चात् वह प्राणियों के लिये सम्यग्दर्शन प्राप्ति का कारण बन जाती है। हजारों वर्षों से, खड़े जिनालय और उनमें विराजित प्रतिमाओं का दर्शन करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

जिनवाणी के महत्त्व/मूल्य को पहचानो/वह महत्त्वपूर्ण है, उसे अथवा उसकी एक गाथा/कारिका या श्लोक को लाखों-करोड़ों रुपयों के द्वारा खरीदा नहीं जा सकता। जिनवाणी कह देने मात्र से वह जिनवाणी नहीं होती अपितु उसे पढ़कर पंचेन्द्रिय विषयों से बचें तभी उसकी सार्थकता है। मूल्य की ओर दृष्टि नहीं होनी चाहिये। जो विषय पोषक तथा व्यवसाय का कारण हो, वह जिनवाणी कैसे हो सकती है? अष्टपाहुड में कुन्दकुन्दस्वामी ने जो कहा है उसका भाव ही लगभग छाया के रूप में रत्नकरण्डक श्रावकाचार में समन्तभद्रस्वामी ने किया है-

**श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।**

**त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥**

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार /४)

कुन्दकुन्दस्वामी ने जहाँ हिंसारहित धर्म, १८ दोषों से रहित जिनदेव तथा निर्ग्रन्थ श्रमण के प्रवचन में श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा है, वहीं रत्नकरण्डक श्रावकाचार में आप्त, आगम तथा तपोभृत में ३ मूढ़ता तथा ८ मद रहित, सम्यग्दर्शन के ८ दोष रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, किन्तु इस ओर किसी की दृष्टि नहीं जा रही है। इसे तो मात्र व्यवहार कहा जाता है। कुछ लोगों के द्वारा पौराणिक ग्रन्थों को कथा कहा जाता है और सही सम्यक्त्व किसी और को मानते हैं। अपनी बात को चलाया जाना/कहना अलग बात है जबकि सही बात का चलना/कथन करना अलग बात है। दुकानदार की आँखें कमजोर होने तथा अंधकार के होने पर खोटी चवन्नी भी चल जाती है। आज कुछ ऐसा ही हो रहा है।

स्वयं ही सोचो, विचार करो कि जिसके माध्यम से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती हो, जिसके पूजन आदि करने से असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा होती हो, उस क्रिया/भाव को सही-सही जानो। देवदर्शन से सम्यग्दर्शन होता है और देवपूजन से कर्मबंध होता है, ऐसा कथन करना ही गलत है। ऐसा कथन उस प्रकार की दुकान में चल सकता है समीचीन दुकान में नहीं।

श्रावकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस गुजरात की अङ्कलेश्वर की पावन भूमि में आज श्रुतपंचमी के दिन सर्वप्रथम श्रुत निबद्ध हुआ, लिपिबद्ध हुआ उसी गुजरात में ज्ञान की नहीं, किन्तु चारित्र की आवश्यकता है। देश, काल के कारण सामाजिक व्यवस्था कुछ बदल सी गयी है पूर्व में जैन समाज का प्रचार-प्रसार विस्तृत था। संख्या भी बहुत थी। तालाब का पात्र वर्षा के कारण बहुत दूर तक फैल जाता है, किन्तु ग्रीष्म काल में थोड़ा सा पानी रह जाता है शेष सूख जाता है। काल के कारण उपादान में कुछ ऐसी ही कमजोरी से एवं परिवर्तन से सुखाव आ जाता है, परन्तु घबराना/डरना नहीं है। थोड़ा भी उस आत्मा को हिलावें, पुरुषार्थ की ओर प्रेरित करें तो अनंत जल भी अन्तः जल के रूप में फूटकर बाहर आकर अंतरआत्मा में आकर जागृति कर सकता है। सूखी नदियों में रेत के कारण आर्द्रता दिखती नहीं है, किन्तु उसमें थोड़ा सा खोदने पर थोड़े ही नीचे स्वच्छ जल प्राप्त हो जाता है। उतने जल से भले ही नदी में पानी बह नहीं सकता, किन्तु रुके हुये उतने जल से प्यास की तृप्ति हो ही जाती है। वैसे ही तीर्थंकर एवं ऋद्धिधारी मुनिराजों एवं चतुर्थकाल के अभाव में आज भी सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के आलंबन से अपना कल्याण किया जा सकता है। जिस प्रकार पानी खेत में नहीं नदी में ही बह/मिल सकता है वैसे

ही पुरुषार्थ करने पर मीठा फल, पुरुषार्थ करनेवाले को ही मिलता/मिल सकता है। वीतराग देव की अभिषेक, पूजा करने से, वीतरागी निर्ग्रन्थ साधुजनों की वैवाचित्य करने तथा उनके द्वारा प्ररूपित बातों पर श्रद्धान करने एवं तदनु रूप आचरण करने से आज भी कल्याण किया जा सकता है।

जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि।

जेण भित्तीं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे ॥

(मूलाचार/३२२)

कुन्दकुन्दस्वामी ने कहा है कि जिनशासन में ज्ञान वही है जिससे रागद्वेषादि पूर्णतः या एकदेश नष्ट हो सके। जिससे विषय-कषाय मिटे उससे ही सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होगी। कल्याणकारी मार्ग पर रुचि बढ़े और कल्याणमार्ग पर स्थित जनों के प्रति अनुराग बढ़े, वही सम्यग्ज्ञान का प्रतिफल है।

धर्मानुराग भले ही राग है, किन्तु वह विषयानुराग से बहुत ऊँचे दर्जे की चीज/बात है। विचार करो कि यदि धर्मानुराग को मात्र राग ही कहा जावे तो कुन्दकुन्दस्वामी ने स्वयं साहित्य का निर्माण क्यों किया? कुन्दकुन्द के हृदय से तो करुणा का अविरल झरना झरता था। आचार्य समन्तभद्र, पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, जयसेन आदि प्रमुख आचार्यों के हृदय में भव्यजीवों के प्रति करुणाभाव था तभी उनके दिव्य सम्यग्ज्ञान से साहित्य सृजन हुआ और हमारी प्यास बुझ सकी। उनकी जिस करुणामयी भावना से हम सभी को दृष्टि मिली उसे राग का कारण कहना ही गलत है। उनके जिस प्रवचन से हम सभी को मार्ग मिला, ऐसे आचार्यों को मार्ग से भटके हुए, कैसे कहा जा सकता है?

आचार्यों ने हितकारी मार्ग प्रदर्शन करना कर्त्तव्य माना है। जिसके पास जो है स्वयं खाते हुए, अन्य को भी खिलाना चाहिए मात्र अकेले ही नहीं खाना है। खाना लड़के को है उसके लिये माँ अपने खिलाने के कर्त्तव्य का पालन अवश्य करती है। बालक अज्ञान है अतः कभी दूर भागता है। उसे खिलाने हेतु माँ बुलाती है। बुलाना गलती नहीं, परन्तु भूख को ही भूल जाना गलती है। हमारी यही गलती है कि हम ऐसे महान् पूर्वाचार्यों की वाणी को ही भूला रहे हैं वे तो हमें समझाते हुए कभी बेटा, कभी वत्स तो कभी भव्य ही कहते हैं। अच्छी बात कहते हुए कभी आवश्यक समझाने पर हमारा कान भी पकड़ लेते हैं। पेट भरने पर ही कान पकड़ा जाता है। दक्षिण में कहा जाता है कि जब तक कान को मसला नहीं जाये तब तक वह कुण्डल पहनने योग्य नहीं होते। उसी प्रकार छोटे बच्चों की नाक को मसले बिना

उसकी नाक टेढ़ी ही रह जाती है। उसे सीधे कर चंपक के समान बनाई जाती है। किसी-किसी की नाक, गर्दन आदि भी सीधी की जाती है। वैसे ही आचार्यों ने हमारी गलती को दूर करने हेतु हमारे कान भी पकड़े हैं। साधु के लिए तो 'आगम चकखू साहू' कहा है परन्तु धर्मानुराग से आचार्यों ने जो साहित्य-सृजन किया है उसे ही राग कहना हमारा दृष्टिदोष है।

**इंदसदवंदियाणं तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणं ।  
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥**

(पंचास्तिकाय/१)

पंचास्तिकाय ग्रन्थ के मंगलाचरण में कुन्दकुन्द भगवान ने लिखा है कि तीन भुवन के भव्यजीवों के हित के लिए श्रमण के मुख से मधुर वचन, करुणा से आपूरित हितकर वाणी निकली थी। ऐसे हितकर, कल्याणप्रद वचनों के लिखनेवाले वीतरागी को भी रागी कहना हमारा दृष्टिदोष ही है।

देव-गुरु-शास्त्रों में दोष निकालना नहीं अपितु उनके अनुरूप चलने से ही हमारा कल्याण होगा। जिस प्रकार आज के दिन हम श्रीधरसेनस्वामी तथा पुष्पदंत एवं भूतबली महाराज का स्मरण कर रहे हैं, क्योंकि उनके माध्यम से हमें यह 'षट्खण्डागम' रूप ग्रन्थ मिला। उसी प्रकार कर्म सिद्धांत के एक अन्य ग्रन्थ 'कसायपाहुड़' की रचना श्री गुणधर आचार्य ने की हैं। कुछ लोग इनको धरसेनस्वामी से भी पूर्ववर्ती मानते हैं। षट्खण्डागम ग्रन्थ जहाँ सूत्रात्मक है वहीं कसायपाहुड़ गाथात्मक है। उन पर नागहस्ती एवं आर्यमक्षु के शिष्य श्री यतिवृषभस्वामी ने 'चूर्णिसूत्रात्मक' विपुल टीका लिखी है। इसी के आधार पर श्री वीरसेनस्वामी ने धवला के समान इस ग्रन्थ पर जय धवला टीका की संरचना की है,

जिसकी पूर्ति बाद में श्री जिनसेन स्वामी ने पूर्ण की थी।

कषायपाहुड़ ग्रन्थ की कुछ विशेषतायें भी हैं। षट्खण्डागम ग्रन्थ में जहाँ बहुत विषय होकर भी बहुत प्रकार का यानी बहुत-बहुत है, किन्तु इसमें मात्र मोहनीय के परिवार मात्र का विस्तृत विवरण है। षट्खण्डागम पर निर्मित धवला टीका युक्त आज १६ पुस्तकें हैं तो १८० या २३३ गाथाओं पर कसायपाहुड़ ग्रंथ में जय धवला टीका युक्त १६ ही पुस्तकें हैं। इसे देखकर जैन नहीं, बल्कि जैनतर लोगों को भी सर्वज्ञत्व पर विश्वास होता है। मोहनीय कर्म का बंध, बंधक कारक, कर्ता, संवर एवं निर्जरा आदि का विस्तृत ज्ञान इसके समान अन्यत्र नहीं है। केवल षट्खण्डागम ही प्राचीन ग्रन्थ नहीं है। यह भी एक प्राचीन आर्षग्रन्थ है जिसको अपनी पात्रता के अनुरूप ही स्वाध्याय कर आत्मा की निगूढ़ता तथा सूखी नदी में से जलांश की प्राप्ति होती है वैसे ही इनके स्वाध्याय/अध्ययन से आत्मा की निगूढ़ता का अवबोध होता है।

**गुरुपदेशादभ्यासात् संवित्तेः स्वपरान्तरम् ।**

**जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ॥**

(इष्टोपदेश/३३)

गुरुओं का उपदेश प्राप्त कर, मार्गदर्शन प्राप्त कर जो आत्मा एवं तत्त्व को प्राप्त करने तत्पर होता है, वह शीघ्र ही इनके पठन-पाठन से रत्नत्रय की प्राप्ति/उपलब्धि के साथ अपने संयम का विकास कर लेता है। इन्हें जो पढ़ने की योग्यता रखते हैं, वे भी जब कभी नहीं खोलें, क्योंकि इनका योग्य विनय/बहुमान आवश्यक है। इनके अवलोकन से दिव्यज्ञान एवं आत्म-कल्याण की अनोखी बात मिलती है।

**'महावीर भगवान की जय'**

'चरण आचरण की ओर' से साभार

## निर्भयता

बुन्देलखण्ड में आचार्य महाराज का यह पहला चातुर्मास था। एक दिन रात्रि के अँधेरे में कहीं से बिच्छू आ गया और उसने एक बहिन को काट लिया। पंडित जगन्मोहनलाल जी वहीं थे। उन्होंने उस बहिन की पीड़ा देखकर सोचा कि बिस्तर बिछाकर लिटा दूँ, सो जैसे ही बिस्तर खोला उसमें से सर्प निकल आया। उसे जैसे-तैसे भगाया गया।

दूसरे दिन पंडित जी ने आचार्य महाराज को सारी घटना सुनाई और कहा कि महाराज! यहाँ तो चातुर्मास में आपको बड़ी बाधा आएगी। पंडित जी की बात सुनकर आचार्य महाराज हँसने लगे। बड़ी उन्मुक्त हँसी होती है महाराज की। हँसकर बोले कि 'पंडित जी, यहाँ भी कल दो-तीन सर्प खेल रहे थे। यह तो जंगल है। जीव-जन्तु तो जंगल में ही रहते हैं। इससे चातुर्मास में क्या बाधा? वास्तव में, हमें तो जंगल में ही रहना चाहिए। कर्म-निर्जरा परीषह-जय से ही होगी।'

उपसर्ग और परीषह-जय के लिए अपनी निर्भयता व तत्परता ही साधुता की सच्ची निशानी है।

कुण्डलपुर (1976)

# ब्रह्ममुहूर्त में जागरण

मुनि श्री सुधासागर जी

जैन परम्परा में ब्रह्ममुहूर्त को जागरण, अध्ययन एवं चिन्तन के लिए सबसे अच्छा समय माना गया है। यदि इस समय का सही सदुपयोग हो तो बल, वीर्य, विद्या और क्रांति बढ़ती है। ब्रह्ममुहूर्त में जागकर देवाचन करना, अपने माता-पिता को प्रणाम करना और गुरु की सन्निधि प्राप्त कर उनके उपदेश को ग्रहण करना श्रेष्ठ माना गया है। ब्रह्ममुहूर्त में श्रावक को जागृत होना चाहिए। चार बजे के बाद जो सौकर उठता है वह जैन और ब्राह्मण नहीं। पहले ऐसी मान्यता थी कि ब्रह्ममुहूर्त में जैन, ब्राह्मण, क्षत्रिय को सूर्य कभी सोते हुए नहीं देख पाता। चक्रवर्ती को सूर्य यह देखने के लिए तरस गया कि यह कब सोता है? सारी जिन्दगी सूर्य नारायण, चक्रवर्ती को सोया हुआ नहीं देख पाया। प्रातः चार बजे उठता था और रात्रि में दस बजे सोता था तो सूर्य देखेगा कैसे? सारी जिन्दगी यही क्रम चला। करोड़ों वर्षों की जिन्दगी थी; लेकिन दिन में कभी नहीं सोया। ब्रह्ममुहूर्त में जाग उठता था। सुप्रभात स्तोत्र में कामना की गई है कि-

यत्स्वर्गा-वत-रोत्सवे यदभवज्जन्माभिषे-कोत्सवे,  
यद्दीक्षा-ग्रहणोत्सवे यदखिल ज्ञान-प्रकाशोत्सवे।  
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः,  
संगीत-स्तुति-मङ्गलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः ॥

अर्थात् श्रीजिनेश के स्वर्ग से माता के गर्भ में आने के समय किये गये उत्सव में, जन्माभिषेक के समय किये गये उत्सव में, दीक्षा ग्रहण करने के समय किये गये उत्सव में, केवलज्ञान के समय किये गये उत्सव में एवं मोक्षप्राप्ति के समय किये गये उत्सव के प्रसंग पर श्रीजिनेन्द्र भगवान् की जो आश्चर्यकारी पूजा हुई; उसी प्रकार के मंगल रूप गायन और स्तुति से मेरा नव-प्रभात महोत्सव भी सदा सम्पन्न हो।

ब्रह्ममुहूर्त में प्रत्येक श्रावक को उठकर के ध्यान करना चाहिए कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है ? सबसे पहले उठकर के आपको हाथ जोड़ना चाहिए। हाथ जोड़ने का तरीका यह है कि दोनों हाथ जोड़िये। कई लोग अशुभ नमस्कार करते हैं। जब शत्रुओं के विनाश, उच्चाटन, मारण आदि बुरे कार्य किये जाते हैं तब यह अशुभ नमस्कार होता है, यह शुभ नहीं माना जाता। नमस्कार यों होना चाहिए कि जो अंगूठे के बीच का स्थान है, यह नमस्कार करते समय अपनी भौंहों के बीच में आना चाहिए। जो दोनों भौंहें

हैं, यह अंगूठे के पहले पोर और अखरी पोर के बीच का स्थान है। यह दोनों पोरों के बाद आना चाहिए। यह श्रीफल कहलाता है। श्रीफल को प्रशस्त इसलिए माना जाता है कि हर व्यक्ति के पास एक श्रीफल है। दोनों हाथ जोड़कर श्रीफल का आकार धारण कर नमस्कार करना चाहिए। कई लोग मुट्ठी बांधकर के नमस्कार करते हैं, यह सब अशुभ नमस्कार कहलाते हैं। कई लोग पीछे हाथ करके नमस्कार करते हैं, यह सब विनाशक नमस्कार कहलाते हैं। सही नमस्कार यह है कि अञ्जुलि को बंद करके अंगूठे को मिलायें और इसे दोनों भौंहों के बीच में रखना चाहिए, यह केन्द्र बिन्दु कहलाता है- 'कंसेन्ट्रेशन ऑफ माइण्ड' (Concentration of Mind) यानि आपको 'कंसेन्ट्रेशन' करना है, मन को एकाग्र करना है तो भौंहों के मध्य स्थान को यदि आप थोड़ा सा दबायेंगे तो सारे, दुनिया भर के विकल्प टूट जाते हैं। ज्ञानार्णव में आचार्य शुभचन्द्र महाराज ने कहा कि सबसे पहले यदि व्यक्ति को ध्यान में बैठना है तो भौंहों के मध्य को दबा देता है और दबाते ही वह अपने आप चारों तरफ से चला जायेगा। आप यदि जोर से इसे पकड़ें, कितने भी चिन्तित हों, कितने भी विपरीत भाव आ रहे हों, तो मन प्रशस्त हो जायेगा, मन ठीक हो जायेगा। यह नमस्कार करने का परिणाम कहलाता है। तो सबसे पहले बिस्तर से उठकर, बिस्तर पर ही यह अञ्जुलि जोड़िये और नमस्कार करिये, नमस्कार में यह प्रणाम कहलाता है। और फिर झुककर के कमर को झुकाकर के आठों अङ्ग जिसमें झुक जायें, गवासन से नमस्कार करें। जो आप घुटने टेककर नमस्कार करते हों; यह नमस्कार प्रशस्त नहीं है, इस नमस्कार के संबंध में शास्त्रों में कोई चर्चा नहीं है। ऐसा आप इसलिए करते हैं कि पैण्ट न फट जाये या क्रीज न बिगड़ जाये; लेकिन सही नमस्कार गवासन से करने का विधान है। फिर आप पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए नमस्कार करिये। उसके बाद आप फिर अञ्जुलि को सामने लाइये और अञ्जुलि को सामने लाकर अञ्जुलि को खोलिये, दोनों मिली रहें तो सामने आपको सबसे पहले चार अंगुलियाँ दिखेंगी। ये चार अंगुलियाँ दिखते ही इनके बीच में आपको एक-एक पोर दिखेगा। तो दोनों हाथ की चार-चार; यह कुल आठ, आठ के तीन गुणा २४ यानी एक-एक पोर पर एक-एक तीर्थकर

को विराजमान करिये, ऋषभदेवजी, अजितनाथजी, सम्भवनाथजी, अभिनंदननाथजी, सुमतिनाथजी आदि २४ भगवानों को विराजमान कर लीजिये और एक-एक पोर को देखते जाइये। ऋषभदेवजी, अजितनाथजी, सम्भवनाथजी; ऐसे २४ पोरों को देखते हुए २४ भगवानों का स्मरण करते हुए और फिर उसके बाद अँगूठे पर आइये। दोनों अँगूठों को आप देखिये, अर्द्धचन्द्राकार बन जायेगा, यह सिद्धशिला का रूप बन जायेगा और यह अंगुलियाँ सिद्ध भगवान् की प्रतीक हो जायेंगी। इस सिद्धशिला पर ऐसे भगवान् विराजमान है, २४ भगवान् हो गये, उन सिद्धपरिमेष्ठी और अरहंत-परिमेष्ठी, २४ तीर्थकर, और यदि विस्तृत करना है तो सामान्य से पंचपरमेष्ठी का स्मरण करके फिर २४ भगवानों के लिए और अनन्त सिद्धपरिमेष्ठियों के लिए गवासन से नमस्कार कीजिये। यह उठते ही सबसे पहले करना। सुप्रभात स्तोत्र में प्रातः काल २४ तीर्थकरों के स्मरण को मंगलकारी माना है-

प्रालेय-नील-हरिता-रुण पीत-भासं,  
यन्मूर्ति-मव्यय सुखा-वसथं मुनीन्द्राः।  
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां,  
त्वद्भयानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥१०॥  
सुप्रभातं सुनक्षत्रं, माङ्गल्यं परि-कीर्तितम्।  
चतुर्विंशति-तीर्थानां, सुप्रभातं दिने दिने ॥११॥

अर्थात् जिनके शरीर की कांति बर्फ के समान सफेद, नील, हरित, लाल और पीली है, जो अविनाशी सुख के स्थान हैं; ऐसे तीर्थकरों का मुनि ध्यान करते हैं। ऐसे तीर्थकरों के ध्यान में मेरा प्रातः काल सर्वदा सम्पन्न हो। चौबीस तीर्थकरों का स्मरण प्रातः काल प्रत्येक के लिए उत्तम, शुभ नक्षत्र वाला, मंगलकारी बताया गया है।

एक गृहस्थ, जो संसार के जंजाल में फंसा है वह कीचड़ में भी पड़ा रहे तो भी जंग न लगे, वह कीचड़ में भी पड़ा रहे तो भी कमल खिल जाए, कीचड़ में भी पड़ा रहे तो भी वह धर्म ध्यान कर सके, ऐसा कैसे हो सकेगा ? यह मैं २४ घण्टे की क्रिया बताता हूँ। सबसे पहले आपने नमस्कार किया और उसी समय आप दो मिनट के लिए मौन भाव से नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें। नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ने के बाद फिर आप पृथ्वी पर पैर रखें। पलंग से उतर जायें, बिस्तर से उतर जायें, बिस्तर छोड़ दें। वैष्णव दर्शन में इसकी एक विधि और है कि सोने के बाद व्यक्ति को पैर रखने से पहले जमीन को छूने की बात कही गयी है। हालांकि यह सम्यक् नहीं है, जमीन एक जड़ है, जमीन का वंदन एक मिथ्यात्व है; लेकिन एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जिसका मैंने यह अर्थ

निकाला। उसका अर्थ यह है कि यह पृथ्वी माँ है। यह भूमि जो हमारा पालन-पोषण करती है, हम इसके साथ अत्याचार करते हैं, हमें यह अच्छे-अच्छे फल, फूल देती है; उसके ऊपर मैं अभी सो रहा था और सबसे पहले पैर रखने वाला था; तो जो हमारा उपकारी हो उसके ऊपर पैर रखना कृतघ्नता है। यह पृथ्वी हमारी उपकारी है और मैं उठकर के अभी पैर रखूंगा, इसलिए शायद किसी ने कहा कि इस पृथ्वी से पहले क्षमा मांग लो और कहो, मैं बिना पैर रखे नहीं रह पाऊंगा। तो वह पहले पलंग पर बैठे बैठे ही पृथ्वी को छूता है और फिर बाद में पैर बढ़ाता है। उसका कारण यह हो सकता है; लेकिन धार्मिक दृष्टि से उसका कोई महत्त्व नहीं है। पृथ्वी एक चर है, उसमें पूज्यता का कोई सवाल नहीं। कभी-कभी लेकिन उपकारी भाव के कारण से यह कार्य करना पड़ता है। अपने (जैनियों के) यहाँ यह करते हैं कि नौ बार णमोकार मंत्र पढ़कर के वह व्यक्ति जायेगा और लघुशंका, शौच आदि शुद्धि से निवृत्त होगा। हाथ पैर धोकर आयेगा। शौच जाइये, लघुशंका जाइये, तो हाथ पैर धोइये, स्नान करने की आवश्यकता नहीं है। उसके बाद एक लकड़ी का पाटा लीजिये अथवा एक डाब की चटाई लीजिये और बिस्तर छोड़ दीजिये। छोड़ने के बाद फिर ध्यान से बैठिये थोड़ी देर, ध्यान में बैठने के बाद चिन्तन करिये कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है? पहला चिन्तन करो कि मैं कौन हूँ? क्या मैं जड़ हूँ? नहीं। क्या मैं परिवार हूँ? नहीं। क्या मैं, धन-दौलत हूँ ? नहीं। क्या मैं यह मित्र मण्डली वगैरह, जिनके साथ में अभी उठकर के संबंध जोड़ूंगा, यह सब हूँ ? नहीं। क्या मैं दुकान हूँ ? नहीं। क्या मैं मकान हूँ ? नहीं। क्या मैं वस्तु हूँ? नहीं। क्या मैं वस्त्र हूँ ? नहीं। क्या मैं शरीर हूँ ? नहीं। इस तरह चिन्तन करना कि मैं जो देख रहा हूँ वह मैं नहीं हूँ, जो देख रहा है वह मैं हूँ। जो सुन रहा हूँ वह मैं नहीं हूँ, जो सुन रहा है वह मैं हूँ। जो चख रहा हूँ वह मैं नहीं हूँ, जो चख रहा है वह मैं हूँ। जो सूँघ रहा हूँ वह मैं नहीं हूँ, जो सूँघ रहा है वह मैं हूँ। जो स्पर्श किया जा रहा है वह मैं नहीं हूँ, जो स्पर्श करने वाला है वह मैं हूँ। अभी कितना ही ध्यान रखना, फिर आगे जब तुम्हारी साधना बढ़ेगी तो तुम कहोगे कि ना मैं सूँघनेवाला हूँ, ना मैं देखने वाला हूँ, ना मैं करने वाला हूँ मैं तो अरेषु हूँ। यह बात विचार में आयेगी। पहले तो अभी यही कर लो कि मैं सूँघनेवाला हूँ। लेकिन जो सूँघ रहा हूँ वह मैं नहीं हूँ, जो फूल सूँघा जा रहा हूँ यह मैं नहीं हूँ; लेकिन जो सूँघ रहा है वह मैं हूँ। यह प्रारम्भिक ज्ञान है। सूँघनेवाला भी आत्मा नहीं है, यह बाद में

जानना, अभी तो व्यवहार में / प्रारंभ में आत्मा के अंदर प्रवेश करने का जो द्वार है, अभी यह जानना चाहिए। देख रहा हूँ यह मैं नहीं हूँ, जो देख रहा है वह मैं हूँ। ऐसा परिणाम करके आप दस मिनट बैठिये और अपने आपका, आपा-पर का ज्ञान करिये कि मैं कौन हूँ ? उदाहरण के रूप में लीजिए- एक व्यक्ति रामलीला खेल रहा था और रामलीला खेलते-खेलते लंका में आग लगाने का प्रसंग था। उस व्यक्ति का घर का नाम था बिहारीलाल और रामलीला में वह बना था बजरंगबली हनुमान। इधर हनुमान का आग लगाने जाना और उधर किसी ने आवाज लगा दी कि बिहारी लाल के घर में आग लग गयी।

अब मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं, एक हनुमान और एक बिहारी लाल और दो कार्य करने हैं, एक आग बुझाना है और एक आग लगाना है। आग लगाना छोड़कर बुझाने जाता है तो सारी आठ दिन की रामलीला का मजा किरकिरा हो जायेगा, क्योंकि उस दिन ज्यादा लोग आते हैं जिस दिन लंका दहन होता है, लोग विनाश को ज्यादा देखते हैं, उस दिन नहीं आयेंगे जिस दिन रामचन्द्रजी कोई अच्छा काम करेंगे; लेकिन जिस दिन लंका का विनाश होगा उस दिन लोग ज्यादा आयेंगे। वह यदि लंका में आग नहीं लगाता है तो लोग कहेंगे कि परिवार से इतना मोह था तो हनुमान क्यों बना ? सारा मजा किरकिरा कर दिया। लोग पत्थर मारेंगे। वह लोगों का मनोरंजन करेगा या आग बुझाने जायेगा ? दूसरा प्रश्न यह है कि जब तुम्हें यह परिणाम आये कि मैं कौन हूँ और ऐसा लगे कि मैं शरीर हूँ या आत्मा हूँ; तब किसकी रक्षा पहले करोगें ? लगता तो यह है कि शरीर ही आत्मा है और आत्मा ही शरीर है। उस समय तुम एक उदाहरण देख लेना कि नहीं, यह शरीर मुझे चलाता है, शरीर न हो तो बोलना बंद हो जाता है, शरीर न हो तो सुनना बंद हो जाता है अरे, मैं कान नहीं हूँ/ आपने महाराज यह कह दिया और कान यदि बिगड़ जाय तो सुनना बंद हो जाय तो सुननेवाला कहाँ रहेगा? आपने कह दिया आँखें मैं नहीं हूँ तो आँखें फूट जाये तो मुझे दिखना ही बंद हो जाये? इसलिए ऐसा लगता है कि आँख मैं हूँ, कान मैं हूँ, रसना मैं हूँ, स्पर्शन मैं हूँ। तो उसके समझाने के लिए क्या उदाहरण देना? आप स्कूटर से जाते हैं तो स्कूटर तुम्हें ले जाता है कि तुम स्कूटर को ले जाते हो? सच बताओ। स्कूटर तुम्हें ले जाता है तो बैठ जाओ स्कूटर पर; ले जायेगा क्या? 'किक' कौन मारता है? स्कूटर से आया हूँ; इस वाक्य पर

निर्णय करना। तुम स्कूटर को ले जा रहे हो या स्कूटर तुम्हें ले जा रहा है? आप अंतिम निर्णय पर पहुँचेंगे कि न स्कूटर हमें ले जाता है और न हम स्कूटर को ले जाते हैं। एक-दूसरे को ले जाते हैं। स्कूटर तुम्हें ले जाता है, तुम स्कूटर को ले जाते हो। इसी प्रकार से जब शरीर आत्मा को चलाता है, कान नाक आत्मा को चलाते हैं और आत्मा, नाक, कान को चलाती है। आत्मा मर जाए तो नाक-कान बने रहेंगे, सब समाप्त हो जायेंगे और आत्मा बनी रहे और नाक-कान फूट जाय तो गड़बड़ हो जायेगी। इसलिए इनका संबंध है; लेकिन है तो पृथक्-पृथक्।

मैं तो एक चैतन्यघन आत्मा हूँ। ज्ञानस्वरूपी हूँ। अपनी आत्मा के स्वरूप का; जो गुरुओं से सुना हो, शास्त्रों में पढ़ा वैसा ही अपनी आत्मा के स्वरूप का चिन्तन करना। वह बिहारीलाल यदि ज्ञानी होगा तो वो कहेगा भाड़ में जाये लंका, पहले मैं घर की आग बुझाने जाता हूँ। अभी रामलीला खत्म हो जायेगी, लंका (नकली) जलकर राख हो जायेगी; लेकिन घर जलकर राख हो जायेगा तो यह तमाशा देखनेवाले मेरा घर बनाने नहीं आयेंगे, कोई नहीं आयेगा। वह तमाशा तो खत्म कर देगा और अपने घर की आग बुझाने चला जायेगा। इसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति दुनिया भर के धंधे-पानी बंद कर देगा और अपनी आत्मा को संभालने में लग जायेगा।

एक तो संसार में आग लगी है और एक अपनी आत्मा में आग लगी है। दो आगें लगी हैं। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर विचार करो कि पहले कौन सी आग बुझाऊँ? सारी दुनिया में आग लगी है, तुम्हारे परिवार में आग लगी, तुम्हारे मोहल्ले में आग लगी, तुम्हारे समाज में आग लगी, तुम्हारे मुल्क में आग लगी और एक अपनी आत्मा में लगी। संसार की आग बुझाने जाओगे तो एक नाटक है, रामलीला है और अपनी आत्मा की आग बुझाने जाओगे तो तुम बिहारीलाल हो। अब दोनों में से तुम्हें निर्णय लेना है, कि कौन सी आग बुझानी है? दुनिया की आग बुझानी है कि अपनी आत्मा की आग बुझानी है ? आत्मा में आग लगी है, आवाज लगा दी है गुरु ने, जैसे उस रामलीला में किसी ने आवाज लगा दी थी, कि बिहारीलाल के घर में आग लग गयी, इसी प्रकार मैं भी तुम्हारे लिए आवाज लगा रहा हूँ, कि तुम्हारी आत्मा में आग लग गयी है और तुमने दुनिया की आग बुझाने के लिए, परिवार की आग बुझाने के लिए, देश की आग बुझाने के लिए यह नाटकीय रूप धारण किया है। हनुमान बनकर तुम आये हो दुनिया की आग बुझाने के लिए, दुनिया के सारे दोष



दूर करने के लिए या दुनिया में आग बुझाने के लिए, दुनिया के सारे दोष दूर करने के लिए। दुनिया में आग लगाने के लिए ? अब दोनों तरफ यह स्थिति बन रही है, आग लगा लो या आग बुझा लो ? अब तुम ज्ञानी होगे तो क्या करोगे

और अज्ञानी होगे तो क्या करोगे ? ज्ञानी होगे तो अपने घर की आग बुझाओगे और अज्ञानी होगे तो पर की आग बुझाओगे। ज्ञानी और अज्ञानी में यही अंतर है।

‘वसुधा पर सुधा’ से साभार

## क्या तत्त्वार्थसूत्र में अनुदिश का उल्लेख है?

मुनि श्री नमिसागर जी

( आचार्य श्री विद्यासागर जी संघस्थ )

जैन परम्परा में तत्त्वार्थसूत्र एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसे जैन बाईबल भी कुछ लोग कहते हैं। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज इसे “The Key of Jainism” कहते हैं। वास्तव में यह जैन धर्म की कुंजी है और इस ग्रंथ को समझने के बाद अन्य ग्रंथों को समझना आसान हो जाता है। दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्पराओं में तत्त्वार्थसूत्र के पाठों में भेद है, यह सर्वविदित है। यदि थोड़ा सा और विचार करें तो हमें ऐसा समझ में आयेगा कि दिगम्बरपरम्परा में भी पाठभेद देखे जाते हैं। पाठभेद का एक नमूना ‘भाण्ड’ शब्द का है जो कि वर्तमान में प्रचलित तत्त्वार्थसूत्र में नहीं है, लेकिन ‘भूवल्य’ में ‘भाण्ड’ शब्द उपलब्ध होता है। नव अनुदिशों का भी ऐसा ही प्रसंग हमें देखने को मिलता है।

यह तो सर्वविदित है कि श्वेताम्बरपरम्परा में अनुदिशों की मान्यता नहीं है, जब कि दिगम्बरपरम्परा में इनकी मान्यता है। तत्त्वार्थसूत्र के वर्तमान संस्करणों में कहीं भी नव अनुदिशों का वर्णन देखने को नहीं मिला है और हम ‘नवसु ---’ इस पाठ से ही नव अनुदिशों को ग्रहण कर लेते हैं, जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र के महान् टीकाकार आचार्य श्री पूज्यपाद ने लिखा है। चौथी शताब्दी के इन महान् आचार्य ने चौथे अध्याय के १९ वें सूत्र की टीका करते हुए लिखा है- ‘नवसु ग्रैवेयकेषु’ इति नव शब्दस्य पृथग्वचनं किमर्थम्? अन्यान्यपि नवविमानानि अनुदिशसंज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनार्थम्। आचार्य श्री पूज्यपाद ने ‘नवसु’ शब्द से ही नव अनुदिशों का ग्रहण किया है, लेकिन मूल में कहीं भी इनका उल्लेख नहीं है।

मुझे अनुदिशों का स्पष्ट उल्लेख करनेवाला पाठ मिला है। यह पाठ मुझे तत्त्वार्थसूत्र की बालचन्द्रदेव की

कन्नड़ टीका में मिला है। यह टीका तत्त्वार्थसूत्र के मूल पाठ के साथ मैसूर विश्वविद्यालय से सन् १९५५ में प्रकाशित हुई थी। इस ग्रंथ का सम्पादन सुप्रसिद्ध विद्वान ए. शान्तिराज शास्त्री जी ने किया है। चौथे अध्याय के १९ वें सूत्र में लिखा है- ‘सौधमैशान---प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेष्वनुदिशेषु --- ॥’ इस सूत्र में स्पष्टरूप से नव अनुदिशों का उल्लेख है और इसकी टीका करते हुए लिखा है ‘अनुदिशेषु नवानुदिशेगकोकं।’ सूत्र ३२ में भी अनुदिश का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है, जिसकी टीका करते हुए बालचन्द्रदेव ने लिखा है ‘नवानुदिशविमानंगकोक् मूवत्तेरहु’ मतलब नवानुदिशविमानों में ३२ सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है।

उपरिम उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि तत्त्वार्थसूत्र में अनुदिशों का उल्लेख है, लेकिन यह समझ में नहीं आता कि यह पाठ छूट क्यों गया है और वर्तमान के सूत्रों में यह पाठ क्यों नहीं मिलता है? सन् १९५० के लगभग बालचन्द्र मुनि हुए हैं और उनके समय में यह पाठ उपलब्ध था। गरज यह है कि प्राचीन हस्तप्रतियों को टटोला जाए, जिससे और भी अनेक बातें स्पष्ट हो सकती हैं। बारहवीं सदी या उसके और पहले की प्रतियों को खोजा जाए और उनका अध्ययन किया जाए तो बहुत अच्छा होगा। यदि विद्वान् लोग इस पर ध्यान दें और इस काम में जुट जाएँ, तो बहुत सी नई बातों का पता लगाया जा सकता है, जिनका कि हमें ज्ञान नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि विद्वान् लोग इस कार्य में अवश्य ही लगेंगे और श्रीमान् वर्ग इस कार्य के लिए विद्वानों का उत्साह बढ़ायेंगे। केवल तत्त्वार्थसूत्र ही नहीं, और भी ग्रंथों की प्रतियों को टटोलने की जरूरत है।

# भगवान् महावीर के विचार विश्व शांति के लिये जरूरी

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'

२४ वें तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्म ५९९ वर्ष ईसापूर्व चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को वैशाली के निकटस्थ कुण्डग्राम में वहाँ नृपति सिद्धार्थ के यहाँ उनकी रानी प्रियकारिणी त्रिशला के गर्भ से हुआ था। जन्म के साथ उनका नाम बर्द्धमान रखा गया; क्योंकि उनके जन्म से सम्पूर्ण प्रकृति एवं मानव समाज में हर स्तर पर वृद्धि देखी और अनुभव की गई। कालांतर में वे वीर, अतिवीर, सन्मति और महावीर के नाम से प्रसिद्ध हुये। वे सामान्य मनुष्य से असाधारण व्यक्तित्व को प्राप्त होकर महान् बने। उनके सिद्धांत और उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षाओं ने जनसामान्य को प्रभावित और लाभान्वित किया अतः वह आज भी पूज्य हैं और उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं। मैं उनके २६०५ वें जन्म दिवस चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के अवसर पर सभी को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं प्रेषित करते हुये कहना चाहता हूँ कि- हम सभी उसी मार्ग का अनुसरण करें जिसे भगवान् महावीर ने बताया और प्रशस्त किया था।

व्यक्ति विकास करना चाहता है- देह से लेकर आत्म तक। हम जिस परिवेश में होंगे वहाँ यदि अनुकूलता होगी, तो विकास के अवसर होंगे और यदि प्रतिकूलता होगी, तो विकास की गति रुकेगी। भगवान् महावीर की दृष्टि में हमारी आत्मा ही सर्वोपरि साध्य और शरीर ही सर्वोत्तम साधन है। भगवान् महावीर के विचार नैतिकता, शरणागत वात्सल्य, समभाव, सौहार्द और सर्वोत्कर्ष की भावना से युक्त हैं। भगवान् महावीर स्वामी ने स्वात्मबल से विपरीत परिस्थितियाँ होते हुए भी उस युग में सर्वप्रथम पराधीनता, शोषण, नरबलि, पशुबलि, यज्ञकर्म में हिंसा, नारी परतंत्रता आदि दुष्प्रवृत्तियों का विरोध किया और प्राणी-प्राणी में एकात्म रूप समानता मानकर, अमीर-गरीब और ऊँच-नीच की दूरी समाप्त करने के लिए प्राणी हितार्थ अहिंसक एवं अपरिग्रही क्रान्ति का सूत्रपात किया। उनकी यह क्रान्ति न एक के लिए थी, न अनेक के लिए थी; बल्कि सबके लिए थी। यह वर्गोदय के विपरित सर्वोदय की सार्थक पहल थी। उनका मानना था कि मनुष्य जन्म से न तो दुराचारी होता है और न सदाचारी; बल्कि उसके कुकर्म ही उसे दुराचारी और सुकर्म ही सदाचारी बनाते हैं। उन्होंने जातिमूलक और दैवमूलक व्यवस्था के विपरित पुरुषार्थवादी कर्ममूलक व्यवस्था को उचित मानते हुए उद्घोष किया कि मनुष्य

जन्म से नहीं अपितु कर्म से महान् बनता है, अतः महान् बनने के लिए ऐसे विचार एवं कार्य किये जायें जिनसे किसी भी प्राणी को कष्ट न हो। यही कारण है कि उन्होंने शारीरिक (कायिक) हिंसा के साथ-साथ वैचारिक हिंसा के त्याग पर बल दिया। यह सत्य है कि मन के विचार ही वाणी में प्रस्फुटित होते हैं और कालान्तर में हिंसा का मार्ग पकड़कर शारीरिक क्षति या कायिक हिंसा में बदल जाते हैं अतः सबसे पहले हमें मन को पवित्र बनाना चाहिए। मन की पवित्रता पवित्र भावों से ही आ सकती है। इसलिए कहा गया है कि-

जं इच्छसि अप्पणतो जं च ण अप्पणतो ।

तं इच्छ परसवि य एत्ति एगं जिसासणं ॥

अर्थात् जैसा तुम अपने प्रति चाहते हो और जैसा तुम अपने प्रति नहीं चाहते हो; दूसरो के प्रति वैसा ही व्यवहार करो। जिन शासन का सार सिर्फ इतना ही है। 'भगवती आराधना' में आचार्य शिवार्य ने लिखा है कि-

जह ते ण पियं दुक्खं तहेव तेसिं पि जाण जीवाणं ।

एवं णच्चा अप्पोव मिवो जीवेसु होदि सदा ॥

अर्थात् जिस प्रकार तुम्हें दुःख प्रिय नहीं है वैसे अन्य जीवों को भी दुःख प्रिय नहीं है; ऐसा ज्ञात कर सर्व जीवों को आत्मा के समान समझकर दुःख से निवृत्त हो।

भगवान् महावीर ने कहा था कि धर्म वही है जिसमें विश्व बंधुत्व की भावना हो; जिसका आदर्श स्वयं जीओ और दूसरों को जीने दो, का हो। जहाँ प्राणी का हित नहीं वहाँ धर्म कदापि संभव नहीं है अतः "परस्पोपग्रहो जीवानाम्" की भावना को जीवन में चरितार्थ करना आवश्यक है। वैसे भी संसार में जितने जीव हैं वे एक-दूसरे का उपकार करके ही जीवित रह सकते हैं। अपकार करने वाला न तो जी सकता है और न ही सुख-शांति को प्राप्त कर सकता है। प्राचीन काल में परस्पर उपकार की भावना होने से जीवन सुखमय था; क्योंकि उस समय आदान-प्रदान अत्यधिक सुगम था। व्यक्ति एक जैसे कार्यों के लिए अपना पारिश्रमिक नहीं लेते थे अपितु एक-दूसरे के विचारों, कार्यों, श्रम एवं वस्तु का विनिमय करते थे। इन कारणों से उस समय का मानव आर्थिक संकटों से पीड़ित नहीं था, किंतु धर्माचरण के लिए व्यक्ति धर्मान्धों और पाखण्डियों के चक्कर में इतना फँसा हुआ था कि स्वविवेक का प्रयोग न कर मात्र,

नरबलि रूप घोर निंद्य पापाचरण को ही धर्माचरण मान बैठा था। ऐसे समय आवश्यकता थी उनका स्वविवेक जगाने की, उनके पुरुषार्थ के उद्घाटन की; और यह कार्य किया भगवान् महावीर ने अपने सर्वोदय तीर्थ के माध्यम से। यह सर्वोदय तीर्थ आज भी जयवंत है, जरूरी है।

भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित सर्वोदय का तात्पर्य था- मनुष्य के अंतर में विद्यमान सद्गुणों का उदय। सद्गुणों के द्वारा मनुष्य अपने विकारों पर विजय प्राप्त कर सकता है। विकारों पर पूर्ण विजय रूप लक्ष्य से परमलक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। वास्तव में सर्वोदय का सिद्धांत ऐसी आध्यात्मिक भित्तियों पर स्थित है जो व्यक्ति को अकर्मण्य से कर्मण्य और कर्तव्य परायण बनने की प्रेरणा देता है; साथ ही पर से निज की ओर और निज से पर की ओर जाने का संकेत भी; अतः पहले स्वयं का आचरण निर्मल बनायें, बाद में अपने जैसा चरित्रवान बनने की दूसरों को प्रेरणा दें।

“सर्वजनं हिताय-सर्वजन सुखाय” अमृत रूपी जिनवाणी के उपदेष्टा भगवान् महावीरस्वामी के इस धर्म-तीर्थ को विक्रम की चतुर्थ शताब्दी में आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने ‘सर्वोदय-तीर्थ’ की संज्ञा देते हुए कहा है कि-

सर्वान्तवद् तदगुण मुख्य कल्पं,  
सर्वान्त शून्यं च मिथोनपेक्षम्।  
सर्वापदामन्तकरं निरन्तम्,  
सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥

अर्थात् हे भगवान् महावीर! आपका सर्वोदय तीर्थ सापेक्ष होने से सभी धर्मों को लिए हुए है। इसमें मुख्य और गौण की विवक्षा से कथन है अतः कोई विरोध नहीं आता; किन्तु मिथ्यावादियों के कथन निरपेक्ष होने से संपूर्णतः वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन करने में असमर्थ है। आपका शासन / तत्त्वोपदेश सर्व आपदाओं का अन्त करने और समस्त संसार के प्राणियों को संसार-सागर से पार करने में समर्थ है अतः वह सर्वोदय तीर्थ है।

भगवान् महावीर ने कहा कि एक दूसरे के विचारों का आदर करो, भले ही वे तुम्हें इष्ट हों या न हों। उन्होंने अहिंसा मूलक आचारव्यवस्था और अनेकांत मूलक विचार व्यवस्था का प्रतिपादन किया। जब दृष्टि आचारोन्मुख होती है तो वह अहिंसा से युक्त हो जाती है और जब यह विचारोन्मुखी होती है तो अनेकान्त से युक्त हो जाती है। अनेकान्त बताता है कि वस्तु के अनेक पक्ष होते हैं। जिनका एक साथ व्यवहार या कथन संभव नहीं है अतः मुख्य और

गौण की विवक्षा लेकर कथन करना चाहिए। आज जो राष्ट्र एक दूसरे के विचारों का आदर करते हुये संवाद के लिए तैयार होते हैं, संवाद करते हैं वे अपनी समस्याओं को भी सुलझा लेते हैं और अपने आप को आत्मनिर्भरता की ओर भी ले जाने में समर्थ हो जाते हैं। वैचारिक संवाद का ही परिणाम है कि आज विश्व शीत युद्ध के भय को पीछे छोड़ चुका है। भगवान् महावीर का यह अनेकान्तात्मक विचार वैचारिक हिंसा से तो बचाता ही है, वह दैहिक हिंसा को भी वर्जित करता है।

पश्चिमी देशों में यह माना जाता है कि बहुसंख्यक लोगों का सुख, उनका अभ्युदय बढ़ाना, प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। सुख का अर्थ वे मात्र शारीरिक या आर्थिक मानते हैं, आत्मिक नहीं। वे यदि बहुतों को सुख मिलता है, तो कुछ लोगों को पीड़ा पहुँचाने के लिए बुरा नहीं मानते; जबकि भगवान् महावीर द्वारा निर्दिष्ट सर्वोदय न तो अल्पसंख्यावादी है, न ही बहुसंख्यावादी। उसका उद्देश्य १०० में से ५१ या १०० में से ९९ का उदय नहीं; बल्कि १०० में १०० का उदय है, इसलिए वर्तमान के उपयोगितावादियों के ‘अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख’ का सिद्धांत उनके विचारों से मेल नहीं खाता।

भगवान् महावीरस्वामी ने जीवन के विकास हेतु अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य; ये पाँच सूत्र बताये; जिनसे व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास होता है। वास्तव में सामाजिक उत्थान करने के लिए यह एक आदर्श व्यवस्था है। यह सिद्धांत सामाजिक जीवन का इस प्रकार संगठन व संवर्द्धन करना चाहते हैं कि प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति अपना पूर्ण विकास कर सके। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह दूसरे के विकास के लिए साधन उपलब्ध कराये।

भगवान् महावीर के विचार एक वैचारिक क्रान्ति हैं जिनका हिंसा में नहीं अहिंसा में अटूट विश्वास है। इन विचारों का पालक सत्याचरण में आस्था रखता है। अचौर्य उसकी साधना है और अपरिग्रह उसका लक्ष्य है। वह आवश्यकता से अधिक धन का संचय नहीं बल्कि त्याग करता है और वह भी स्वेच्छा से। वह जोड़ने से अधिक छोड़ने में विश्वास करता है। तभी उसे ब्रह्मचर्य रूप साध्य की प्राप्ति होती है। आज जीवन में सत्य की साधना कठिन हो गयी है जबकि इसके बिना सामाजिक समरसता, शुचिता और सर्वोदय की भावना नहीं बन सकती है। सच्चाई के रास्ते पर चलने वाला व्यक्ति ही सामाजिक होता है जिसका

लक्ष्य है- “भूमा वै सुखं, नाल्पे सुखमस्ति” अर्थात् समष्टि के सुख में ही मानव का सच्चा सुख निहित है, अल्प के सुख में सुख नहीं है।

भगवान् महावीर ने कहा कि कामनाओं को जीतो; क्योंकि कामनाओं का कोई अन्त नहीं है। कामनायें असीम हैं और व्यक्ति भी अनेक हैं। हम सोचें कि हम किसको क्या दे सकते हैं? दाता का भाव रखना समष्टि हित के लिए जरूरी है। दूसरे या समष्टि के उत्थान की चाह सर्वोदय की सक्रियता की हार्दिक भावना का प्रतीक है।

आज हम जिस आतंकवाद को देख रहे हैं उसके मूल में कहीं न कहीं अधिकतम भूमि, अधिकतम राज्य और अधिकतम संसाधनों पर अपना कब्जा करना है। भगवान् महावीर की दृष्टि में यह सोच ही गलत है। वे कहते हैं कि प्रकृति के पास इतना है कि वह तुम्हारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है; लेकिन तुम्हारी इच्छाओं की नहीं। क्योंकि इच्छायें असीम होती हैं जिनकी पूर्ति न इच्छा करने वाला कर सकता है और न ही कोई शासक या राजा। अतः सर्वप्रथम अपनी इच्छाओं को संयमित करो और जो संसाधन तुम्हें प्राप्त हैं उनका बेहतर उपयोग करते हुये जीना सीखो। जो व्यक्ति सहअस्तिस्व में विश्वास रखता है, दूसरे के विचारों का आदर करता है वह कभी भी किसी की हिंसा नहीं कर सकता। जरूरी है कि हम व्यक्ति के मन में सद्विचार और अहिंसक भावनाओं को प्रतिष्ठित करें। उसे संयम से जीना सिखायें।

भगवान् महावीर ने कर चोरी को राष्ट्रद्रोह मानते हुए इसे असत्य आचरण माना है। जो राष्ट्र के विकास के लिए आर्थिक विषमता दूर करना चाहते हैं, उन्हें शोषण और शोषणकारियों से बचना चाहिए। आर्थिक विषमता के कारण सामाजिक शोषण भी होता है। यह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष चोरी से उत्पन्न होता है। इससे बचने के लिए भगवान् महावीर ने कहा कि श्रम करो, श्रम का आदर करना सीखो। वे सच्चे अर्थों में श्रमण थे। उन्होंने अस्तेय/अचौर्य को परिभाषित करते हुए कहा कि- ‘अदत्तादानं स्तेयं’ अर्थात् बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण करना चोरी है। कल, बल, छल या दूसरे तरीकों से जिस पर अपना अधिकार नहीं है, उन वस्तुओं का स्वयं ग्रहण करना, दूसरों को देना चोरी है। इससे बचना चाहिए। जो व्यक्ति अस्तेय भावना को अपना लेता है वह राष्ट्र की संपदा का सबसे बड़ा संरक्षक होता है।

भगवान् महावीर ने बताया कि संसार के सभी प्राणियों

में एक जैसी आत्मा है। भले ही उनके शरीर उनकी गतियों के अनुरूप हो सकते हैं। इस भेद के आधार पर किसी का हनन नहीं करना चाहिए। जीओ और जीने दो का सिद्धांत यही बताता है। उन्होंने कहा कि-

सव्वे पाणा पियाउआ सुहसाया दुक्खपडिकूला।

अपियवहा पियजीविणो जिविउ कामा॥

सव्वेसिं जीवियं पियं॥

अर्थात् सभी प्राणियों को आयु प्रिय है। सभी सुख चाहते हैं, दुःख से घबड़ाते हैं। वध नहीं चाहते हैं, जीने की इच्छा करते हैं, सबको अपना जीवन प्यारा है। इसमें हमें अपने अस्तित्व को बचाये रखना है तो दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिए। यही सहिष्णुता है और यही सहअस्तिस्व की भावना है।

समाज के कमजोर वर्ग के उत्थान के लिए संपदा का स्वेच्छा से विसर्जन करना अपरिग्रह है। समाज में संग्रह की प्रवृत्ति उथल-पुथल मचाती है। यदि इसका उचित समाधान नहीं किया गया तो जनसंघर्ष या वर्ग की स्थिति बनती है। अतः ना तो अधिक धन का प्रदर्शन करना चाहिए और ना ही आवश्यकता से अधिक धन का संचय करना चाहिए। तभी हम शांति से जीवन यापन कर सकते हैं। सुख, शांति त्याग में है, संचय में नहीं।

भगवान् महावीर ने नारियों का सम्मान सुरक्षित करना पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्य माना क्योंकि नारी समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। चंदना के उद्धार से उन्होंने यह संदेश जन-जन में दिया कि स्त्री भी समाज में पुरुषों की तरह आदर एवं सम्मान की पात्र है। आज जो लोग गर्भ में ही कन्याओं की भ्रूण हत्या कर रहे हैं उन्हें इस पाप से बचना चाहिए। यह राष्ट्र एवं समाज के प्रति द्रोह है जिसकी अनुमति न धर्म देता है और न समाज। संयमी जीवन सुख का संवाहक होता है इसलिए भगवान् महावीर ने स्वस्त्री या स्वपुरुष से ही रमण करने का गृहस्थों को संदेश दिया और साधुओं से कहा कि वह पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये आत्महित करें। इस नियम का पालन करने पर एड्स जैसी भयंकर बीमारी की उत्पत्ति को रोका जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् महावीर के विचार आज भी प्रासंगिक हैं और यह सभी समस्याओं का समुचित समाधान करने में समर्थ हैं। हम सब इन्हें अपनाकर अपना जीवन सुखमय बना सकते हैं।

मंत्री- अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद  
एल-६५, न्यू इंदिरानगर, बुरहानपुर ( म.प्र. ) फोन- २५७६६२

# जैन समाज एवं संस्कृति पर उछलते प्रश्न

## महावीर जयन्ती पर विचारणीय

डॉ० अनेकान्त जैन

किसी महापुरुष का एक वाक्य कहीं पढ़ा था कि सभ्यता और संस्कृति महज वक्त का प्रवाह नहीं होती, उसे गढ़ना भी पड़ता है। जब दिशाहीनता अमर्यादित रूप से हावी हो जाये, तो उसे सोच विचार कर दिशा देनी पड़ती है।

वर्तमान में कई स्थलों पर ऐसे अनुभव होते हैं कि उनकी व्याख्या करना भी कठिन हो जाता है। हम जिस समाज और युग में जी रहे हैं, उसके साथ एडजेस्ट होने की तमाम कोशिशों में हम अपनी मूल सभ्यता की बलि भी चढ़ा देते हैं और सही मायनों में एडजेस्ट भी नहीं हो पाते हैं। हम भले ही कभी-कभी आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता की होड़ में अपने बाहरी तौर-तरीकों और दिखावे में परिवर्तन कर लेते हैं, किन्तु हमारी आत्मनिर्वसित चेतना हमें हमेशा झकझोरती रहती है कि हम वे नहीं हैं जो हम होना चाहते हैं। इस टकराव में हम दोनों स्थानों से हाथ धो बैठते हैं। फिर एक नयी संस्कृति जन्म लेने लगती है, जो न तो पूर्णतः हमारी होती है और न पूर्णतः परायी।

### हमारे ही मंचो पर होते हैं आक्षेप

अक्सर देखा जाता है कि हम बड़े-बड़े समारोहों में किन्हीं नेता, मंत्री या उच्चपदस्थ, बड़े ओहदे के लोगों को आमंत्रित करते हैं, उन्हें माला पहना कर सम्मान करते हैं। वे प्रायः अजैन ही होते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे सम्मान से ये प्रसन्न हो जायें और हमें या हमारे समाज को कोई बहुत बड़ा लाभ दे दें। पर अधिकतर ऐसा होता नहीं है। ऐसे आयोजन किन्हीं साधु अथवा सेठ की शक्ति और महिमा-प्रदर्शन के साधन मात्र बनकर रह जाते हैं। नेताओं के चरित्र से हम भलीभाँति बाकिफ हैं। वे मंच पर आते हैं, साधुओं और सेठों की प्रशंसा में लम्बे कसीदे पढ़ते हैं और चले जाते हैं। कभी-कभी कुछ मुख्य अतिथि जैन समाज पर व्यंग्य भी करते हैं। कई समस्याओं के लिए जैनों को स्वयं जिम्मेदार ठहरा देते हैं। ऐसे समय में अक्सर अजैन मुख्य अतिथि अपने वक्तव्य में यह जरूर कहता है कि “जैनों के पास पैसा बहुत है, वो बहुत पैसे वाले हैं। भगवान् महावीर ने अपरिग्रह की बात कही थी, किन्तु जैन ही सबसे ज्यादा परिग्रही दिखते हैं।” सुना है मेनका गाँधी तो अब जैन समारोहों

में इसलिए नहीं आतीं कि जैन, प्रतिष्ठामहोत्सव में हाथी पर बैठते हैं। जीवदया सिखानेवाला धर्म जीवों पर यह अत्याचार करता है और वह भी धार्मिक समारोहों में। ओर भी कई तरह की बिडम्बनायें देखने में आती हैं। हम शासनप्रमुखों से कोई माँग करते हैं, तो वे यह कहकर कि ‘आपके पास बहुत पैसा है, आप स्वयं करिये। हम जमीन या मान्यता बस दे देंगे’-वे अपना पल्ला झाड़ लेते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। मीडिया द्वारा सल्लेखना या संथारा को आत्महत्या बतलाना भी एक मसला है। “जैन भी मांसाहारी हो रहे हैं” यह भी एक मजाक है, जो अब होने लगा है।

### परिग्रह-अपरिग्रह बना है मुसीबत

यह बात अलग है कि जगत् में भले ही यह प्रसिद्धि हो कि जैनों के पास बहुत पैसा है, जब संसार के या देश के दस बीस बड़े रईसों की लिस्ट अखबार में आती है, तो उसमें एक भी जैन नहीं होता या अगर होती भी है, तो निचले पायदान पर। इस पर भी अगर सचमुच सही सर्वे किया जाय तो सत्तर प्रतिशत जैन आम लोगों की तरह मध्यमवर्गीय सात्त्विक जीवन व्यतीत करते पाये जायेंगे। हाँ, तीस प्रतिशत ऐसे जरूर मिल जायेंगे, जो वास्तव में संपन्न दिखेंगे, और उसमें भी यदि हकीकत देखी जाये, तो दस प्रतिशत ही ऐसे मिलेंगे जो बड़े-बड़े उद्योगपतियों में गिने जाते हों। आप अक्सर देखेंगे कि इन दस प्रतिशत में कम से कम सात प्रतिशत ऐसे निकल जायेंगे, जिन्हें जैन धर्म, संस्कृति से कोई विशेष लगाव नहीं है और वे न जाने किस कारण से अजैन साधु-संतों और तांत्रिकों के ज्यादा भक्त बने दिखायी देते हैं। बुनियादी हकीकत देखी जाय, और इस बात का यदि कोई प्रामाणिक सर्वे करवाया जाय, तो उसके आँकड़े चौंकानेवाले होंगे। सच सबके सामने आ जायेगा। जब कोई मंच से यह कहता है कि ‘जैनों के पास बहुत पैसा है’, तो हम समझ नहीं पाते हैं कि वो हमारी प्रशंसा कर रहा है, हम पर व्यंग्य कर रहा है, या हमें फुसला रहा है, ताकि कोई घोषणा न करनी पड़ जाये। हम सीधे-सीधे साधरण जैन अपने ही ऊपर हँसते हैं, ताली बजाते हैं और भाषण की बिना कोई आलोचना किये, अपना पल्ला झाड़ कर घर चले जाते हैं।

## हमारे लिए विचारणीय

सबसे पहले हमें सोचना होगा कि जब भी किसी देश, प्रदेश, सरकार, समाज या धर्म की एक सामान्य छवि बनती है, तो वह कोई आधारहीन भी नहीं होती और वह छवि एक दिन में भी नहीं बनती। हम यदि स्वयं की समीक्षा भी करें, तो बात बुरी नहीं होगी।

हम धार्मिक परिभाषा और दृष्टिकोण को एक बार ऊँचे सिंहासन पर बैठाकर गौण करके विचार करें, तो हम पायेंगे कि हम सभी कहीं न कहीं पूँजीवादी मानसिकता से ग्रसित तो हैं ही। सच तो यह है कि हम जीवहिंसा को तो पाप मानते हैं, किन्तु परिग्रह को पुण्य का फल मानकर उसे उपादेय मानते हैं। हम परिग्रह को पाप मान ही नहीं रहे हैं। समाजवाद के अनुसार सच यही है कि जब एक स्थान पर पूँजी बढ़ती है, तो उसका अर्थ है कि समाज का एक बड़ा वर्ग शोषण का शिकार हो रहा है। जब युगों तक सतत यही क्रम चलता है, तो शोषित वर्ग मजबूरी में हिंसा और अन्य पापों का रास्ता अपनाता है।

विचार करें! हमने परिग्रह का भी तमाशा बनाया है और अपरिग्रह का भी। परिग्रह हम पर पूरी तरह हावी है। परिग्रह पाँच में एक पाप है। किन्तु शादी-विवाह हो या धार्मिक मंच परिग्रहवालों की होड़ है। लड़केवाले लड़कीवालों का परिग्रह देखकर रिश्ता करते हैं, लड़कीवाले भी अधिकाधिक परिग्रह से युक्त लड़का पसन्द करते हैं। विवाहसमारोहों में परिग्रहप्रदर्शन प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ है। धार्मिक समारोह में सबसे बड़ा परिग्रही, दान में उदारता के कारण ऊँचे स्थान पर बैठता है। सभाओं, परिषदों का मुखिया भी परिग्रह देखकर ही बनाया जाता है। व्यापारी और परिग्रह का अविनाभाव संबंध है। बाजारीकरण के इस दौर में यह सब और भी अधिक प्रशंसनीय व उपयोगी हो गया है। अपरिग्रही साधु भी परिग्रही गृहस्थों से घिरा है। तीर्थ बनवाने से लेकर बड़े-बड़े पांडालोंवाले समारोह उन्हें इनके बिना बनते नहीं दिखते। कभी-कभी उन्हें भी उन्हीं की जुबान बोलनी पड़ती है। बहुत पुरानी कहावत है 'पैसा बोलता है'। पैसा तो जड़ है, वह कैसे बोल सकता है, लेकिन माया ही कुछ ऐसी है जिसके कारण पैसा चेतन और मानव जड़ दिखायी देने लग गया है। हम सभी एक कृत्रिम वातावरण में रह रहे हैं। मंच पर अपना लक्ष्य मोक्ष बतलाने की आदत सी हो गयी है, भले ही हमारे क्रियाकलापों का सम्बन्ध मोक्षमार्ग से बिल्कुल न हो।

## भोग भोगने का एक बहाना यह भी

सच यह है कि हम भोग छोड़ना चाहते ही नहीं हैं। इसके विपरीत जब भोगों के प्रति उदासीनता के प्रवचन दिये जाते हैं, उन्हें सुनकर भी हम 'अनासक्ति' की बहुत बड़ी ढाल खड़ी करते हैं और यह सोचकर या कहकर पंचेन्द्रियों के भोगों में पुनः संलग्न हो जाते हैं कि 'अनासक्त भोग' ही धर्म है। हमारा एक चिर परिचित तर्क है कि मूर्च्छा को परिग्रह कहा गया है और यदि मूर्च्छा न हो तो परिग्रह बुरा नहीं है। रास्ता निकालने में हम बहुत चतुर हैं। कहने का तात्पर्य- अधिक कमाने की लालसा, प्रचुर भोग सामग्रियों का संग्रह और इन सबके साथ आत्मानुभूति हमें पसंद है। इनके बिना आत्मानुभूति क्या होती है, हम जानते ही नहीं हैं। बाजार और परिग्रह का तर्क आज इतना अधिक बलवान् हो गया है कि उसका निषेध करने में भी पसीना छूटता है।

## पैसा कमाने में बुराई क्या है?

पैसा हमेशा से एक बड़ी जरूरत रहा है। बात सिर्फ रोटी, कपड़ा और मकान तक सीमित नहीं है। बच्चों को ऊँची शिक्षा देना कोई बुरी बात नहीं है, लेकिन उसके लिए भी बहुत पैसा चाहिए। एक अच्छे घर में रहना और अच्छे वस्त्र पहनना भी कोई अपराध तो नहीं, अच्छे स्तर का शुद्ध सात्विक भोजन भी कोई सस्ता थोड़े ही आता है। इन सबके लिए व्यक्ति की एक मासिक मोटी आय होनी चाहिए। इन सबके लिए यदि कोई पुरुषार्थ करता है और लक्ष्मी अर्जित करता है, तो इसमें बुराई क्या है? सही है, इसमें बुराई नहीं है, यह हर मानव का अधिकार है। पर यह अधिकार भी तब तक ही सुरक्षित है जब तक इसमें अनैतिकता प्रवेश न करे। यदि इसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य को चोरी करना पड़ती है, रिश्वत लेनी पड़ती है, या आय-व्यय के लेखा जोखा में हेर-फेर करनी पड़ती है, तो ये आवश्यकतायें अपराध में आ जाती हैं। इसके लिए मनुष्य भी दोषी है और व्यवस्था भी। मनुष्य इसलिये दोषी है कि उसके पास आवश्यकताओं की कोई सीमा निर्धारित नहीं है, जिसे हम परिग्रहपरिणाम व्रत कहते हैं। व्यवस्था इसलिए दोषी है कि व्यवस्था की ही खराब और असफल नीतियों के कारण मनुष्य के सामने यह संकट खड़ा होता है कि वह अपनी सीमित आय में से परिवार एवं स्वयं की आवश्यकता की भी पूर्ति नहीं कर पा रहा है। कभी-कभी अनचाही अनैतिकता भी उसे अपनाती पड़ती है।

## हमारी अजीब सी स्थिति

वोट की राजनीति हम कर नहीं सकते, क्योंकि हम अल्पसंख्यक हैं। घोषित अल्पसंख्यकों को जो सुविधाएँ और रियायतें दी जाती हैं, वे इसलिए कि उनके वोट बहुत हैं और वे वास्तव में बहुसंख्यक हैं। हमें अल्पसंख्यक होते हुए भी उन अधिकारों का लाभ नहीं, क्योंकि हम बहुसंख्यक में गिने जाते हैं। हम धनी माने जाते हैं, लेकिन हमसे ज्यादा समृद्धशालियों की संख्या अन्य समाज में है। महावीर भगवान् के २६००वें निर्वाण महोत्सव में हमें धनी मानकर मात्र सौ करोड़ आवांठित होते हैं, और खालसावर्ष पर छह सौ करोड़ स्वीकृत होते हैं। मैं नहीं मानता कि सिक्खसमुदाय कम धनी है। किन्तु उनके पास धन के साथ-साथ कृपाण भी है।

देश में मुस्लिम केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैं, जिनका अरबों का बजट केन्द्र सरकार वहन करती है। कई हिन्दू विश्वविद्यालय हैं, जिनका पूरा बजट सरकारी है। इस तरह के अनेक उदाहरण हैं। हम हमेशा एक जैन विश्वविद्यालय को रोते हैं। किसी तरह बजट भी अपना बना लें, तो मान्यता को रोते हैं। आखिर ऐसा होता क्यों है? मैं मानता हूँ कि इस तरह की पीड़ा हर जैन की है। ये वो विडम्बना है जिससे हम आप कहीं न कहीं रूबरू होते रहते हैं और आपस में ही कह सुनकर घुटते रहते हैं।

## हमारा सामाजिक ढाँचा मजबूत नहीं है

यह कहने में कोई बुराई नहीं है कि महज पैसा किसी भी समाज को मजबूत नहीं बनाता। समृद्धि कई तरह से होना चाहिए। मैं मानता हूँ कई स्तरों पर जैन समाज का सामाजिक ढाँचा कमजोर है। उसका सबसे बड़ा कारण है कि हमारा चिन्तन सामूहिक चिन्तन नहीं है, वह व्यक्तिगत चिन्तन है। हम धर्म और समाज के प्रत्येक कार्य के लिए साधु समाज पर पूर्णतः निर्भर हैं। इसीलिए हमारे नेतृत्व में अपरिपक्वता झलकती है। साधुओं की अपनी मर्यादायें और लक्ष्य हैं। हम जबरन उन्हें अपनी हर योजनाओं में घसीटते हैं। उनका दखल अच्छा भी लगता है। हमें प्रेरणा, मार्गदर्शन और आशीर्वाद की खासी आवश्यकता है, लेकिन यह दखल यहीं तक सीमित नहीं रहता। पोस्टरों पर यही शीर्षक होता है, लेकिन दरअसल पूरा नेतृत्व इन्हीं का होता है। समाज कुछ नहीं करता, सिवाय आदेश पालन के। ऐसे वक्त में हम थोड़ी बहुत सफलता प्राप्त करके खुश हो जाते हैं। कई स्थलों पर इन्हीं के कारण इतने विवादों में घिर जाते हैं कि विकास में लगने वाला धन और शक्ति इन विवादों को निपटाने में खर्च हो जाती है। दरअसल हम लोग समाज-

विकास के बारे में उस तरीके से नहीं सोचते हैं, जैसे कि अपने परिवार या व्यवसाय के विकास के बारे में सोचते हैं योजनायें बनाते हैं और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करते हैं।

अधिकांश लोग समाज की बुराई ही करते नजर आते हैं, बिना यह सोचे कि समाज कोई व्यक्ति नहीं है बल्कि समूह है और वे सभी भी समाज में आते हैं, वे एक इकाई हैं, जिनसे मिलकर ही समाज बनता है। हम और आप ही मिलकर समाज बनाते हैं। हमारी आपकी कमियाँ एवं खूबियाँ ही समाज की कमियाँ एवं खूबियाँ बनती हैं।

## पैसा तो सबके पास है

आज पैसा सबके पास है। उच्च आयवर्ग की संख्या प्रत्येक मजहब व समाज में बढ़ी है। गणना की जाये तो जैन मन्दिरों की अपेक्षा हिन्दू मन्दिरों की संख्या ज्यादा है। उनमें पैसा भी जैन मन्दिरों की अपेक्षा कई गुना ज्यादा है। हम एक-एक तीर्थ को बचाने या विकास करने के लिए जगह-जगह चन्दे की गुहार लगाते हैं, तब जाकर कहीं मुश्किल से काम चलाऊ धन एकत्रित होता है। हिन्दूमन्दिरों में भोग और चढ़ावा ही इतना ज्यादा आता है कि मन्दिर तो दूर पुजारियों के भी महल बन जाते हैं। टाटा, बिरला, मित्तल अम्बानी आदि सैकड़ों देश के सबसे बड़े उद्योगपति जैन नहीं हैं। विरला मंदिर देश में सर्वाधिक हैं, जो चन्दे से नहीं बनते हैं। कहने का मतलब यह कि हम बिना वजह उस बात में मार दिये जाते हैं, जो बात सिर्फ हम पर लागू नहीं होती, इसके हकदार हर वर्ग के लोग हैं। मुसलमानों की मस्जिदों, सिक्खों के गुरुद्वारों के पास कितना फण्ड रहता है इसका हिसाब किसके पास है?

## मांसाहारी होने का आरोप कितना सही है?

हमारे स्वभिमान तथा चरित्र पर सबसे बड़ा आरोप जो आजकल लगने लगा है, वह है मांसाहारी होने का। अभी हाल ही में 'अहा! जिन्दगी' नामक पत्रिका के फरवरी ०७ के अंक में मेनका गाँधी ने अपने एक लेख की शुरुआत ही कुछ इन शब्दों से की है- 'टूरिस्टों को कुछ तो हो जाता है जैसे कुछ जैन पर्यटक भी छुट्टियों में जब विदेश घूमने जाते हैं, तो वहाँ मांस खाने लगते हैं।' दबे स्वरों में हमारे आस-पड़ोसी भी इस प्रकार के अन्य अनेक आरोप तो हमारे ऊपर लगाते ही रहते हैं, किन्तु खुलेआम इस प्रकार एक प्रतिष्ठित पत्रिका के एक लेख में मेनका गाँधी द्वारा की गयी यह टिप्पणी संभवतः प्रथम बार है। मैं समझता हूँ आज के इस विपरीत परिवेश में भी जैन समाज में शुद्ध शाकाहारियों का

प्रतिशत अंठानवे तो होगा, जो कि इस दृष्टि से अन्य समाज की अपेक्षा कहीं अधिक है।

अपना पक्ष प्रस्तुत करने के बाद हम आज की स्थिति पर ईमानदारी से विचार भी करें, तो पायेंगे कि अपने ही समाज में रात्रिभोजनत्याग, शुद्ध शाकाहार इत्यादि का पालन करनेवाले लोगों का प्रतिशत नीचे गिर रहा है। बात बड़े शहरों में रहनेवाले जैनों की हो अथवा छोटे शहरों में रहने वालों की, समस्या सभी जगह है। हमें जन्म से मिली इस विरासत को हम, इतना हल्का और अर्थहीन समझने लगे हैं कि उसके मूल्य हमारे जीवन से कपूर की तरह उड़ रहे हैं। सच यह है कि नयी पीढ़ी में यह दर तेजी से बढ़ रही है। होटलों और रेस्टोरेन्टों पर अधिकांश रूप से आश्रित नवयुवक व युवतियाँ अज्ञानता में, आधुनिकता में प्रेस्टीज में तथा कई पैसे के मद में इतने चूर हैं कि उन्हें यह समझाना कठिन हो रहा है कि शाकाहारी रहना और नशा इत्यादि नहीं करना अधिक सभ्य, आधुनिक तथा प्रासंगिक है। यह कोरी धार्मिक रीति ही नहीं, बल्कि जीवन के बुनियादी उसूलों में, सदाचार की श्रेणी में आता है। हम श्रावकाचार के पालन की असमर्थता भले ही व्यक्त करें, लेकिन श्रावकाचार में ही समाहित लोकामान्य सदाचार को छोड़ना तो आदिम बर्बरपन की ओर कदम बढ़ाना है।

### कुछ समाधान भी हैं

मुझे अक्सर पाठकों के पत्र मिलते हैं और उन पत्रों में वे अक्सर कहते हैं कि आप समस्या तो बता देते हैं, किन्तु समाधान भी बतलाया कीजिए। मैं समझता हूँ इस सांस्कृतिक संक्रमण के दौर में भी कुछ तो समाधान हैं हीं, जिनका आचरण करके हम अपनी छवि पूर्व की भाँति बेहतर बना सकते हैं।

1. हम बड़े से बड़े कार्यक्रमों में भभड़ता का परिचय न देकर सादगी को महत्त्व दें। प्रचार से ज्यादा विचार और प्रदर्शन से ज्यादा दर्शन को स्थान दें।

2. वर्तमान में मुनिराजों तक के प्रवचनों में तालियों की गड़गड़ाहट गूँजने लगी है। प्रवचन में तालियाँ गरिमानुकूल नहीं हैं, अतः उन पर संयम जरूरी है।

3. धर्मायतनों में तथा ध्यानकेन्द्रों में ए.सी. इत्यादि का प्रयोग भोग को प्रदर्शित करता है, योग को नहीं। इसका कड़ा निषेध हो। हिंसा के साथ-साथ यह खर्चीला भी होता है।

4. धार्मिक उत्सवों में जो सामूहिक भोज का आयोजन

होता है, वह बहुत खर्चीला तथा छप्पन भोगवत् नहीं होना चाहिए। उसमें भी संयम और सादगी का परिचय दिया जा सकता है। इसके लिए कुछ नियम भी बनें। प्रायोजकों द्वारा वैभवप्रदर्शन इसके माध्यम से भी होता है।

5. किन्हीं समारोहों में नेता, मंत्री या उच्च पदाधिकारी का बुलाना जब तय हो, तो उन्हें अथवा उनके निजी सचिव को अपने धर्म, समाज तथा संस्कृति की विशेषता तथा प्राचीनता बतलानेवाला, सकारात्मक विचारों से युक्त तीन चार पेज का मैटर टाइप करके दे दें। वे प्रायः अजैन होते हैं तथा मूलभूत सिद्धान्तों एवं तथ्यों से अनभिज्ञ होते हैं तथा इस प्रकार के भाषणों की तैयारी के लिए उनके पास समय नहीं होता, अतः वहीं मंच पर आकर जैसा दुनिया में भ्रम फैला है, उससे प्रभावित होकर अपना वक्तव्य दे डालते हैं। इससे कभी-कभी विरोधाभास का भी सामना करना पड़ता है और मीडिया भी उसे उसी अर्थ में लेकर कवरेज करता है।

6. प्रत्यक्ष मांस तो कोई नहीं खाता, किन्तु परोक्षरूप से हम उसके भागी बन जाते हैं। हमें इस बात पर भी दृढ़ता दिखानी होगी कि बाजारू बर्थडे केक, पेस्ट्री, इत्यादि बेकरी की वस्तुयें हमारे जीवन का हिस्सा न बनें। उस रेस्टोरेन्ट और होटल या समारोह का शाकाहारी भोजन भी न करें, जहाँ मांसाहार की भी व्यवस्था हो। मांसाहार नहीं करने को स्वभिमान तथा गर्व के साथ प्रस्तुत करें। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि इस बदलते युग में यदि कोई ग्लोबल गृहस्थ ईमानदारी से मात्र शाकाहार का व्रत भी पूर्णता के साथ पालन कर ले, तो सबसे बड़ा धर्म कर रहा है।

7. हम प्रत्येक कार्य करके भी यदि अच्छी पुस्तकों को पढ़ने की आदत डालें तथा समाजिक स्तर पर भी आध्यात्मिक स्वाध्याय को प्रोत्साहित करें, तो वैचारिक विकास हमें सुदृढ़ बनायेगा।

8. मैं चाहता हूँ कि आप सभी अपने विचार समाधान इन विषयों पर व्यक्त करें, मुझे भेजें, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करायें तथा इस विचार शृंखला को बढ़ाते जायें। ध्यान रखें, विचार बदलेंगे तो आचार बदलेगा।

9. महावीरजयन्ती जिस बृहद् स्तर पर मनाते हैं, उसी स्तर पर ऋषभदेव जयन्ती भी मनायें। जैनधर्म के आदि-प्रवर्तक का परिचय जन जन में होना चाहिए।

इन बिन्दुओं पर विचार करके यदि हम कुछ शुभारम्भ करेंगे, तो महावीरजयन्ती सार्थक हो जायेगी।

जैन दर्शन विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री  
राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली - 16



# जातिभेद पर अमितगति आचार्य

पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार

जैन समाज में 'अमितगति' नाम के एक प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। इनके बनाये हुए उपासकाचार, सुभाषितरत्नसंदोह और धर्मपरीक्षा आदि ही कितने ग्रंथ मिलते हैं और वे सब आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। ये आचार्य आज से प्रायः ९०० वर्ष पहले विक्रम की ११ शताब्दी में- राजा मुंज के समय में हुए हैं और इन्होंने धर्मपरीक्षा ग्रंथ को विक्रम संवत् १०७० में बनाकर समाप्त किया था। इस ग्रंथ के १७ वें परिच्छेद में आपने जातिभेद पर कुछ महत्त्व के विचार प्रकट किये हैं, जो सर्वसाधारण के जानने योग्य हैं। अतः नीचे पाठकों को उन्हीं का कुछ परिचय कराया जाता है:-

**न जातिमात्रतो धर्मो लभ्यते देहधारिभिः ।**

**सत्यशौचतपः शीलध्यानस्वाध्यायवर्जितैः ॥२३ ॥**

जो लोग सत्य, शौच, तप, शील, ध्यान और स्वाध्याय से रहित हैं उन्हें जातिमात्र से-महज किसी ऊँची जाति में जन्म ले लेने से धर्म का कोई लाभ नहीं हो सकता।

**भावार्थ-** धर्म का किसी जाति के साथ कोई अविनाभावी संबंध नहीं है, किसी उच्च जाति में जन्म ले लेने से ही कोई धर्मात्मा नहीं बन जाता। अथवा यों कहिये कि सत्य शौचादिक से रहित व्यक्तियों के उनकी उच्च जाति धर्म की प्राप्ति नहीं करा सकती प्रत्युत। इसके जो सत्य-शौचादि गुणों से विशिष्ट हैं वे हीन जाति में उत्पन्न होने पर भी धर्म का लाभ प्राप्त कर सकते हैं और इसलिये जो लोग किसी उच्च कहलाने वाली जाति में उत्पन्न होकर सत्य-शौचादि धर्मों का अनुष्ठान न करते हुए भी अपने को ऊँचा, धर्मात्मा, धर्माधिकारी या धर्म का ठेकेदार समझते हैं और दूसरी जातिवालों का तिरस्कार करते हैं, यह उनकी बड़ी भूल है।

**आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम् ।**

**न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति नियता क्वापि तात्विकी ॥२४ ॥**

जातियों की जो यह ब्राह्मण-क्षत्रियादि रूप से भेद-कल्पना है वह आचार मात्र के भेद से है-वास्तविक नहीं। वास्तविक दृष्टि से कहीं भी कोई नियता-अथवा शाश्वती-ब्राह्मण जाति नहीं है (इसी तरह पर क्षत्रिय आदि जातियाँ भी तात्विकी और शाश्वती नहीं हैं)।

**भावार्थ-** ये मूल जातियाँ भी (अग्रवाल, खंडेलवाल आदि उपजातियों की तो बात ही क्या) गो अश्वादि जातियों

की तरह वास्तविक नहीं हैं किन्तु काल्पनिक हैं और उनकी यह कल्पना आचार मात्र के भेद से की गई है। अतः जिस जाति का जो आचार है उसे जो नहीं पालता, वह उस जाति का व्यक्ति नहीं-उसकी गणना उस जाति के व्यक्तियों में की जानी चाहिये जिसके आचार का वह पालन करता है। ऐसी दशा में ऊँची जाति वाले नीच और नीची जाति वाले उच्च हो जाने के अधिकारी हैं। इसी में भीलों तथा म्लेक्षों आदि की जो कन्याएँ उच्च जातिवालों से विवाही गई वे आचार के बदल जाने से उच्च जाति में परिणत होकर उच्चत्व को प्राप्त हो गई, और उनके कितने ही उदाहरण 'विवाह क्षेत्र-प्रकाश' में दिये गये हैं।

**ब्राह्मणक्षत्रियादीनां चतुर्णामपि तत्त्वतः ।**

**एकैव मानुषी जातिराचारेण विभज्यते ॥२५ ॥**

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों की वास्तव में एक ही मनुष्य जाति है, वही आचार के भेद से भेद को प्राप्त हो गयी है-जो भेद अतात्विक है।

**भावार्थ-** सब मनुष्य मनुष्य जाति की अपेक्षा समान हैं-एक ही तात्विक जाति के अङ्ग हैं- और आचार अथवा वृत्ति के बदल जाने पर एक अतात्विक जाति का व्यक्ति दूसरी अतात्विक जाति का व्यक्ति बन सकता है। अतः एक जाति के व्यक्ति को दूसरी जाति के व्यक्ति से कभी घृणा नहीं करनी चाहिये और न अपने को ऊँचा तथा दूसरे को नीचा ही समझना चाहिये। ऊँच नीच की दृष्टि से यह भेद कल्पना ही नहीं।

**भेदे जायेत विप्रायां क्षत्रियो न कथंचन ।**

**शालिजातौ मया दृष्टः क्रोद्वयस्य न संभवः ॥२६ ॥**

यदि इन ब्राह्मणादि जातियों के भेद को तात्विक भेद माना जाये तो एक ब्राह्मणी से कभी क्षत्रिय पुत्र पैदा नहीं हो सकता; क्योंकि चावलों की जाति में मैंने कभी कोदों को उत्पन्न होते हुए नहीं देखा।

**भावार्थ-** इन जातियों में चावल और कोदों जैसा तात्विक भेद मानने पर एक जाति की स्त्री से दूसरी जाति का पुत्र कभी पैदा नहीं हो सकता। ब्राह्मणी के गर्भ से क्षत्रिय पुत्र का और क्षत्रिया के गर्भ से वैश्य अथवा ब्राह्मण पुत्र का उत्पाद नहीं बन सकता। परन्तु ऐसा नहीं है, ब्राह्मणों में अथवा ब्राह्मणियों के गर्भ से कितने ही वीर क्षत्रिय पैदा हुए हैं, और क्षत्रियों में अथवा क्षत्राणियों के गर्भ से अनेक वैश्य

पुत्रों का उद्भव हुआ है जिनके उदाहरणों से शास्त्र भरे हुए हैं और प्रत्यक्ष में भी ऐसे दृष्टान्तों की कमी नहीं है। अग्रवाल जो किसी समय क्षत्रिय थे वे आज प्रायः वैश्य बने हुए हैं। ऐसी हालत में यह सुनिश्चित है, कि इन जातियों में कोई तात्विक अथवा प्राकृतिक भेद नहीं है—सबकी एक ही मनुष्य जाति है। उसी को प्रधानतः लक्ष्य में रखना चाहिये।

**ब्राह्मणोऽवाचि विप्रेण पवित्राचारधारिणा।**

**विप्रायां शुद्धशीलायां जनिता नेदमुत्तरम् ॥२७॥**

**न विप्राविप्रयोरस्ति सर्वदा शुद्धशीलता।**

**कालेनाऽनादिना गोत्रे स्खलनं क्व न जायते ॥२८॥**

यदि यह कहा जाये कि पवित्राचारधारी ब्राह्मण के द्वारा शुद्धशीला ब्राह्मणी के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होता है उसे ब्राह्मण कहा गया है—तुम ब्राह्मणाचार के धरनेवाले को ही ब्राह्मण क्यों कहते हो?—तो यह ठीक नहीं है। क्योंकि यह मान लेने के लिये कोई कारण नहीं है कि उन ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों में सदा काल से शुद्धशीलता का अस्तित्व (अक्षुण्णरूप से) चला आता है। अनादि काल से चली आई हुई गोत्र-सन्तति में कहाँ स्खलन नहीं होता?—कहाँ दोष नहीं लगता?—लगता ही है।

**भावार्थ-** इन दोनों श्लोकों में आचार्य महोदय ने जन्म से जाति माननेवालों की बात को निःसार प्रतिपादन किया है—जन्म से जातीयता के एकांत पक्षपाती जिस रक्त-शुद्धि के द्वारा जाति, कुल अथवा गोत्र शुद्धिकी डुगडुगी पीटा करते हैं, उसी की निःसारता को घोषित किया है और यह बतलाया है कि वह अनादि प्रवाह में बन ही नहीं सकती—बिन किसी मिलावट के अक्षुण्ण रह ही नहीं सकती। इन पद्यों में कामदेव की दुर्निवारता और उससे उत्पन्न होने वाली विकारता का वह सब आशय संनिहित जान पड़ता है जिसे पं. आशाधरजी ने कुल-जाति-विषयक अहङ्कृति को मिथ्या, आत्मपतन का हेतु और नीच गोत्र के बंध का कारण ठहराते हुए, अपने अनगारधर्माभूत ग्रन्थ और उसकी स्वोपज्ञ टीका में प्रकट किया है<sup>१</sup> और जिसका उल्लेख लेखक द्वारा विवाह-क्षेत्र-प्रकाश<sup>२</sup> के 'असवर्ण और अन्तर्जातीय विवाह' नामक प्रकरण में किया गया है। गोत्रों में अन्य प्रकार से कैसे स्खलन होता है, उनकी धारा कैसे पलट जाती है और वे कैसे विचित्र स्थिति को लिये हुए हैं, इस बात को सविशेष रूप से जानने के लिए विवाह-क्षेत्र-प्रकाशका 'गोत्रस्थिति और सगोत्रविवाह' नाम का प्रकरण देखना चाहिये।

**संयमो नियमः शीलं तपोदानं दमो दया।**

**विद्यन्ते तात्विका यस्यां सा जातिर्महती सताम् ॥२९॥**

सत्पुरुषों की दृष्टि में वह जाति ही बड़ी अथवा ऊँची है जिसमें संयम, नियम, शील, तप, दान, दम (इन्द्रियादि निग्रह) और दया ये गुण वास्तविक रूप से विद्यमान होते हैं—बनावटी रूप से नहीं।

**भावार्थ-** इन गुणों का यथार्थ में अनुष्ठान करनेवाले व्यक्तियों के समूह को ही ऊँची जाति कहते हैं। और इसलिये जो व्यक्ति सच्चवाई के साथ इन धर्मगुणों का पालन करता है उसे ऊँची जाति का अङ्क समझना चाहिये—भले ही वह नीच कहलाने वाली जाति में ही क्यों न उत्पन्न हुआ हो। उपर्युक्त गुण ऐसे हैं जिन्हें सभी जातियों के व्यक्ति धारण कर सकते हैं और वे धारण करनेवाले व्यक्ति ही उस महती जाति का निर्माण करते हैं जो आचार्य महोदय की कल्पना में स्थित है।

**दृष्टा योजनगन्धादिप्रसूतानां तपस्विनाम्।**

**व्यासादीनां महापूजा तपसि क्रियतां मतिः ॥३०॥**

(धीवरादि नीच जातियों की) योजनगंधादि स्त्रियों से उत्पन्न व्यासादिक तपस्वियों की लोक में महापूजा देखी जाती है— यह सब तप संयमादि गुणों का ही माहात्म्य है—अतः तपसंयमादि गुणों की प्राप्ति का ही यत्न करना चाहिये (उससे जाति स्वयं ऊँची उठ जायेगी)।

**भावार्थ-** नीच जाति की स्त्रियों से उत्पन्न व्यक्ति यदि नीच जाति के ही रहते और नीच ही समझे जाते तो व्यास जी जैसे तपस्वी, जो कि एक धीवर कन्या से व्यभिचार द्वारा उत्पन्न हुये थे, लोक में कभी इतनी पूजा और प्रतिष्ठा को प्राप्त न कर सकते। इससे साफ जाहिर है कि नीच जाति के व्यक्ति भी सद्गुणों के प्रभाव से ऊँच जाति के हो जाते हैं। अथवा यों कहिये कि नीच जातियों में भी अपने-अपने रत्न उत्पन्न होते हैं और हो सकते हैं। इसलिये उनकी उपेक्षा की जाने योग्य नहीं—उन्हें ऊँचे उठने का यत्न करना चाहिये।

**शीलवन्तो गताः स्वर्गे नीचजातिभवा अपि।**

**कुलीनां नकं प्राप्ताः शीलसंयमनाशिनः ॥३१॥**

नीच जातियों में उत्पन्न होने पर भी सदाचारी व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त हुये हैं और ऊँच जातियों में जन्म लेने वाले असदाचारी-शीलसंयमादि से रहित-कुलीन लोग भी नरक में गये हैं।

**भावार्थ-** ऊँची जातिवाले जब नीच गति को और नीच जातिवाले ऊँची गति को प्राप्त हुये हैं—और हो सकते हैं—तब वास्तव में इन ऊँच-नीच गिनी जानेवाली जातियों का कुछ भी महत्त्व नहीं रहता। उच्चत्व और नीचत्व का अथवा अपने उत्कर्ष और अपकर्ष का सारा खेल गुणों के ऊपर अवलंबित है। अतः सद्गुणों की प्राप्ति करने कराने का यही

यत्न होना चाहिये। उनकी प्राप्ति में वस्तुतः कोई नीच कही जानेवाली जाति बाधक नहीं है।

**गुणैः सम्पद्यते जातिर्गुणध्वंसैर्विपद्यते।**

**यतस्ततो बुधैः कार्यो गुणेष्वेवादरः परः ॥३२॥**

**जातिमात्रमदः कार्यो न नीचत्वप्रवेशकः।**

**उच्चत्वदायकः सद्भिः कार्यः शीलसमादरः ॥३३॥**

उत्तम गुणों से ही उत्तम जाति बनती है और उत्तम गुणों के नाश से वह जाति नष्ट हो जाती है—नीचत्व को प्राप्त हो जाती है। इसलिये बुद्धिमानों को सबसे अधिक गुणों का ही आदर करना चाहिये (बाह्य जाति पर दृष्टि रखकर या उसके भुलावे में भूल कर उसी को सब कुछ न समझ लेना चाहिये)। साथ ही, अपनी जाति का कभी मद नहीं करना चाहिये। (अपनी जाति को ऊँचा और दूसरों की जाति को नीचा समझने रूप) यह मद आत्मा में नीचत्व का प्रवेश करने वाला है—उसे नीचे गिराने वाला अथवा नीच बनाने वाला है। उच्चत्व का देने वाला—आत्मा को ऊपर उठानेवाला—शीलसंयमादि गुणों के प्रति आदर भाव है—भले ही उन गुणों का प्रादुर्भाव किसी नीच जाति के व्यक्ति में ही क्यों न हुआ हो—और इसलिये सत्पुरुषों को उसी आदर भाव से काम लेना चाहिये—जाति भेद के चक्कर में पड़ कर गुणियों अथवा गुणों का तिरस्कार नहीं करने देना चाहिये।

**भावार्थ—** इन ब्राह्मणादिक जातियों का बनना और बिगड़ना सब गुणों पर ही मुख्य आधार रखता है—उनका मूल जन्म नहीं, किन्तु गुण समुदाय है। गुणों के अविर्भाव से एक नीच जाति वाला उच्च जाति का और गुणों के अभाव से एक उच्च जातिवाला नीच जाति का व्यक्ति बन जाता है किसी की जाति अटल या शाश्वती नहीं है—अटल है तो एक मनुष्य जाति है जो जीवनभर तक छूट नहीं सकती, उसी पर पूरा लक्ष्य रखना चाहिये। इसलिये महज जन्म की वजह से दूसरों के व्यक्तित्व का तिरस्कार करना उचित नहीं—उचित है दूसरों के गुणों का आदर करना, उनमें गुणों के अविर्भाव की भावना रखना और उसका सब ओर से प्रत्यन करना, यही दोनों के लिये उत्कर्ष का साधक है। इसी से आचार्य महोदय ग्रन्थ के अंतिम भाग में लिखते हैं:

**यस्यास्ति सम्यक्त्वमसौ पटिष्ठो**

**यस्यास्ति सम्यक्त्वमसौ वरिष्ठः।**

**यस्यास्ति सम्यक्त्वमसौ कुलीनो**

**यस्यास्ति सम्यक्त्वमसौ न दीनः ॥ ७७ ॥**

अर्थात् जो मनुष्य सम्यक्त्व गुण का धारक है वह अत्यंत चतुर है, श्रेष्ठ है, कुलीन है और अदीन है।

**भावार्थ—** जैन धर्म के अनुसार नीच से नीच जाति का मनुष्य भी सम्यक्त्व गुण को धारण कर सकता है—एक चाण्डाल का पुत्र भी सम्यग्दृष्टि हो सकता है। स्वामी समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में ऐसे चाण्डाल पुत्र को 'देव' लिखा है—आराध्य<sup>३</sup> बतलाया है। अतः ऐसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नीच जाति के पुरुषों को भी अमितगति आचार श्रेष्ठ कुलीन और अदीन लिखते हैं। यह है गुणों का आदर—भाव, गुणों के अविर्भाव की सद्भावना और सद्प्रेरणा।

आचार्य महोदय के इन सब उद्गारों पर अधिक टीका टिप्पणी की जरूरत नहीं—वे इन जाति भेदों को किस दृष्टि से देखते थे और उन्हें क्या महत्त्व देते थे यह सब ऊपर के कथन से बिल्कुल स्पष्ट है। और इसलिये जो समान वर्ण, समान धर्म, और समान गुण—शील वाली उपजातियों में भी अनुचित भेदभाव की कल्पना किये हुये हैं—परस्पर में रोटी बेटी का संबंध एक करते हुये हिचकिचाते हैं—उन्हें आचार्य महाराज के इन उद्गारों से जरूर कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और उस कदाग्रह को छोड़ देना चाहिये, जो धर्म तथा समाज की उन्नति में बाधक है। जो लोग कदाग्रह को छोड़कर अंतर्जातीय विवाह करने लगे हैं उनकी यह उदार तथा विवेक परिणति निःसंदेह प्रशंसनीय और अभिनंदनीय है।

**'अनेकान्त' वर्ष १/ किरण २  
वीर निर्वाण सं. २४५६ से साभार**

**सन्दर्भ**

१. आशाधरजी के उस कथन का एक वाक्य इस प्रकार है -

**अनादाविह संसारे दुर्वारि मकरध्वजे।**

**कुले च कामिनीमूले का जातिपरिकल्पना ॥**

२. यह १७५ पृष्ठ की पुस्तक छह आने मूल्य में ला. जौहरीमल जी जैन सराफ, दरीबा कलाँ देहली के पास मिलती है।

३. यह 'देव' का 'आराध्य' अर्थ प्रभाचन्द्र आचार्य ने रत्नकरण्ड-श्रावकाचार की टीका में दिया है।

**ढूँढता फिरता हूँ अय इकबाल अपने आपको,  
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंजिल हूँ मैं।**

**इकबाल**

## पंचोपचारी पूजा

पं. मिलापचन्द्र कटारिया

विक्रम सं० ११०४ में होनेवाले श्री मल्लिषेणसूरिने “भैरवपद्मावती कल्प” के तीसरे परिच्छेद में ऐसा कथन दिया है-

आह्वानं स्थापनं देव्याः, सन्निधीकरणं तथा ।

पूजां विसर्जनं प्राहुर्बुधाः, पंचोपचारकम् ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीं नमोऽस्तु भगवति ! पद्मावति ! एहि एहि संवौषट् ।

कुर्यादमुना मंत्रेणाह्वानमनुस्मरन् देवीम् ॥ २६ ॥

तिष्ठद्वितयं ठांतद्वयं च संयोजयेत् स्थितीकरणे ।

सन्निहिता भव शब्दं मम वषडिति सन्निधीकरणे ॥ २७ ॥

गन्धादीन् गृह्ण गृह्णेति नमः पूजाविधानके ।

स्वस्थानं गच्छ गच्छेति जस्त्रिः स्यात् तद्विसर्जने ॥ २८ ॥

“ॐ ह्रीं नमोऽस्तु भगवति ! पद्मावति ! एहि एहि संवौषट्” इति आह्वानम् ।

“ॐ ह्रीं नमोऽस्तु भगवति ! पद्मावति ! तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः” इति स्थापनम् ।

“ॐ ह्रीं नमोऽस्तु भगवति ! पद्मावति ! मम सन्निहिता भव भव वषट्” इति सन्निधिकरणम् ।

“ॐ ह्रीं नमोऽस्तु भगवति ! पद्मावति ! गंधादीन् गृह्ण गृह्ण नमः” इति पूजाविधानम् ।

“ॐ ह्रीं नमोऽस्तु भगवति ! पद्मावति ! स्वस्थानं गच्छ गच्छ जः जः जः” इति विसर्जनम् ।

एव पंचोपचारक्रमः ।

देव का आह्वान, स्थापन, सन्निधीकरण, पूजन और विसर्जन जो किये जाते हैं उन्हें पंचोपचार कहते हैं इसी का दूसरा नाम पंचोपचारी पूजा है, इनका मंत्रपूर्वक जो विधिक्रम है वह ऊपर लिख दिया है ।

ऐसा प्रतिभासित होता है कि पहिले पंचोपचारी पूजा मंत्र सिद्ध करने के लिए देवताराधन में की जाती थी। अर्हतादि की पूजा में पंचोपचार का उपयोग नहीं किया जाता था। हम देखते हैं कि सोमदेव ने यशस्तिलक में और पद्मनन्दि ने पद्मनन्दिपंचविंशतिका में अर्हतादि की पूजा में सिर्फ अष्टद्रव्यों से पूजा तो लिखी है, किन्तु आह्वान, स्थापना, सन्निधिकरण, विसर्जन नहीं लिखा है। यह चीज हमको प्रथम आशाधर के प्रतिष्ठापाठ और अभिषेकपाठ में मिलती है। आशाधर ने इतना विचार जरूर रखा है कि अर्हतादि की पूजा में आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण तो लिखा है, किंतु विसर्जन नहीं लिखा है। हाँ शासनदेवों की पूजा में उन्होंने विसर्जन लिख दिया है ।

जैसा कि नित्यमहोद्योत के इस पद्य से प्रकट है-

प्रागाहूता देवता यज्ञभागैः प्रीता भर्तुः पादयोरर्घदानैः ।

क्रीतां शेषां मस्तकैरुद्वहन्यः प्रत्यागंतुं यान्वशेषा यथास्वम् ॥ १६५ ॥

इसमें विसर्जित देवों के लिये “अर्हत की शेषा को मस्तकों पर धारण करते हुये” जाने का उल्लेख किया है। जिससे यहाँ शासनदेवों का ही विसर्जन ज्ञात होता है, न कि पंचपरमेष्ठी का। एक बात आशाधर के पूजाग्रन्थों में यह भी देखने में आती है कि वे शासनदेवों की पूजा में तो अर्चना द्रव्यों के अर्पण में “जलाद्यर्चनं गृहाण गृहाण” या “इदमर्घ्यं पाद्यं जलाद्यं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यताम्”

इस प्रकार के वाक्य प्रयोग करते हैं। ऐसे प्रयोग उन्होंने अर्हतादि की पूजाओं में नहीं किये हैं। वहाँ तो वे यों लिखते हैं-

“ॐ ह्रीं अर्ह श्री परमब्रह्मणे इदं जलगन्धादि निर्वपा-मीति स्वाहा ।”

फिर भी इतना तो कहना ही पड़ता है कि अर्हतादि की पूजा विधि में आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण की परिपाटी चलाने में शायद ये ही मुखिया हों। अपने बनाये प्रतिष्ठाग्रन्थ की प्रशस्ति में खुद पं० आशाधर लिखते हैं कि “मैंने इसे युगानुरूप रचा है” युगानुरूप का अर्थ पूजाविधि में इस तरह की नई रीतियाँ चलाना ही जान पड़ता है।

आशाधर के बाद इन्द्रनन्दी हुये, जिन्होंने इस विषय में और भी आगे बढ़कर अर्हतादिकों की पूजा विधि में वे ही पंचोपचार ग्रहण कर लिये, जो मल्लिषेण ने मंत्राराधन में लिखे हैं। इन्होंने शासनदेवों की ही तरह अर्हतादिकों का विसर्जन भी लिख दिया है। यही नहीं, अर्हतादि की पूजा में द्रव्य अर्पण करते हुये “इदं पुष्पांजलिं प्राचनं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं” तक लिख दिया है। (देखो अभिषेकपाठसंग्रह पृष्ठ ३४४)। इन्हीं को आधार मानकर एकसंधि ने भी अर्हतादिकों की पूजा पंचोपचार से करना बताते हुये लिखा है कि- “मैंने यह वर्णन इन्द्रनन्दी के अनुसार किया है” यथा-

एवं पंचोपचारोपपन्नं देवार्चनाक्रमम् ।

यः सदा विदधात्येव सः स्थान्मुक्तिश्रियः पतिः ॥

इतीन्द्र नंदिमुनीन्द्रजिनदेवार्चनाक्रमः ॥

-परिच्छेद ९वाँ “एकसन्धिजिनसंहिता”

ये ही श्लोक कुछ पाठ भेद के साथ ‘पूजासार’ ग्रन्थ

में पाये जाते हैं। यथा-

यः सदा विदधात्येनां सः स्यान्मुक्तिश्रियः पतिः ।

इतीन्द्रनंदियोगीन्द्रैः प्रणीतं देवपूजनम् ॥

एकसन्धि का पंचोपचारी पूजा के लिये इन्द्रनंदि का प्रमाण पेश करना साफ बतलाता है कि उनके समय में इस विधि का प्रतिपादक सिवाय इन्द्रनंदि के और कोई पूजा-ग्रन्थ मौजूद नहीं था। यहाँ तक कि इन्द्रनंदि के साथ उन्होंने आदि शब्द भी नहीं लगाया है यह खास तौर से ध्यान देने योग्य है।

यशोनंदिकृत संस्कृत पंचपरमेष्ठी पूजा में भी आशाधर की तरह चार ही उपचार मिलते हैं विसर्जन उसमें नहीं है। किन्तु यशोनंदि का समय अज्ञात है कि वे आशाधर के पूर्ववर्ती हैं या उत्तरवर्ती?

नित्यनियम पूजा में पाँचों ही उपचार पाये जाते हैं किन्तु नित्यनियम पूजा किसी एक की कृति नहीं है। वह संग्रहग्रन्थ है और उसमें कितने ही पाठ अर्वाचीन हैं। उदाहरण के तौर पर “जयरिसह रिसीसर णमियपाय” यह देव की जयमाला का पाठ कवि पुष्पदन्त कृत अपभ्रंश यशोधरचरित्र का है। उसमें शुरू में ही यह मंगलाचरण के तौर पर लिखा हुआ है- “वृषभोऽजितनामा च संभवाश्चाभिनन्दनः” पाठ अय्यपार्य कृत अभिषेकपाठ का है जो अभिषेक पाठसंग्रह के पृष्ठ ३१६ पर छपा है। ये अय्यपार्य विक्रम सं० १३७६ में

हुये हैं।

“ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया।” विसर्जन का यह पहला पद्य आशाधर प्रतिष्ठापाठ से लिया है जो उसके पत्र १२३ पर पाया जाता है।

‘आह्वानं नैव जानामि’ और ‘मन्त्रहीनं क्रियाहीनं’ आदि विसर्जन के दो पद्य सूरत से प्रकाशित भैरवपद्मावतीकल्प के साथ मुद्रित हुये पद्मावती स्तोत्र में कुछ पाठभेद के साथ पाये जाते हैं वहीं से इसमें लिये गये हैं। वे पद्य इस प्रकार हैं-

आह्वानं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।

पूजामर्चा न जानामि क्षमस्व परमेश्वरि ॥

आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतम् ।

तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥

अलावा इसके पंचोपचार में प्रयुक्त हुये ‘संवौषट्’ ‘वषट्’ आदि शब्दों पर जब हम विचार करते हैं, तो स्पष्टतया यह प्रकरण मंत्रविषयक द्योतित होता है। वीतराग भगवान् की पूजा जिस ध्येय को लेकर की जाती है, उसमें इनका क्या काम?

वर्तमान में पूजाविधि का जो रूप प्रचलित है वह कितना प्राचीन है? आशा है खोजी विद्वान् इसका अन्वेषण करेंगे। इसी अभिप्राय से यह लेख लिखा गया है।

जैन निबन्ध रत्नावली ( प्रथम भाग ) से साभार

## ‘जिनभाषित’ के सम्बन्ध में तथ्यविषयक घोषणा

|                |   |
|----------------|---|
| प्रकाशन स्थान  | : 1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी, आगरा - 282002 (उ.प्र.)                        |
| प्रकाशन अवधि   | : मासिक   |
| मुद्रक-प्रकाशक | : रतनलाल बैनाड़ा  |
| राष्ट्रीयता    | : भारतीय  |
| पता            | : 1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी, आगरा - 282 002 (उ.प्र.)                       |
| सम्पादक        | : प्रो. रतनचन्द्र जैन   |
| पता            | : ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा, भोपाल - 462 039 (म.प्र.)                        |
| स्वामित्व      | : सर्वोदय जैन विद्यापीठ, 1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी, आगरा - 282002 (उ.प्र.) |

मैं, रतनलाल बैनाड़ा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

रतनलाल बैनाड़ा, प्रकाशक

# विद्वत्परिषद् की ओर से एक स्पष्टीकरण : आम्नाय एक ही है

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन

अभी कुछ दिन पूर्व मुझे श्री भरतकाला (मुम्बई) द्वारा प्रेषित दो पृष्ठीय लेख मिला, जिसका शीर्षक था- "दिगम्बर जैन समाज कृपया विचार करे।" उसमें मुनिपुङ्गव श्री सुधासागरजी प्रेरणा व सान्निध्य में दि. ४ अक्टूबर, २००६ को आयोजित शास्त्री व विद्वत्परिषद् के संयुक्त अधिवेशन में दोनों परिषदों को दिये गये मुनिपुङ्गव श्री सुधासागरजी महाराज के आशीर्वाद / वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए कहा गया है कि क्या आम्नाय दो नहीं हैं ? यदि आम्नाय भी दो हैं, १३ और २०, फिर २० पंथ आम्नाय मान्य शासन देवताओं के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगानेवाला यह निर्णय संयुक्त अधिवेशन में सर्वसम्मति से कैसे ले लिया गया कि शासन देवी-देवताओं का पूजन-विधान-अनुष्ठान आदि आगम सम्मत नहीं हैं...। इसके साथ ही जो और प्रश्न उपस्थित किए गए हैं उन पर मेरा निवेदन है कि समाज उनके इस परिपत्र / लेख से विचलित न हो बल्कि उन्हीं के भावनानुसार जैन परम्परा / आगम / सिद्धांत के आलोक में विचार अवश्य करे। मेरा तो इतना ही निवेदन है कि-

पंथ और आम्नाय एक नहीं होते, एक हो जायें तो बहुत अच्छी बात है। जैन परम्परा में वर्तमान में एक ही आम्नाय चल रही है, जो मान्य भी है और वह है 'कुन्दकुन्दाम्नाय'। सभी मूर्तियों, शास्त्रों, गुरुओं के मुख से तथा पंचकल्याणक प्रतिष्ठासहोत्सव आदि में इसी कुन्दकुन्दा-म्नाय का उल्लेख मिलता है। हजारों मूर्ति व अन्य शिलालेख इसके प्रमाण हैं। अतः आम्नाय तो एक ही है कुन्दकुन्दाम्नाय। अतः १३ पंथ आम्नाय या २० पंथ आम्नाय के लिए जैनागम या जैन परम्परा में न पूर्व में कोई स्थान था और न अब है, न आगे होगा।

आपका यह मानना कि शास्त्रपरिषद् का उक्त निर्णय शासन देवताओं के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगानेवाला है; सो यह आपका कोरा भ्रम है तथा समाज को भ्रमित करनेवाला है। वास्तविकता तो यह है कि हमारी दोनों शास्त्री एवं विद्वत् परिषदें शासन देवताओं के अस्तित्व को स्वीकार करती हैं। परम पूज्य मुनिपुङ्गव श्री सुधासागरजी महाराज, उनके गुरुवर्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज भी अनेक बार सार्वजनिक रूप से बता चुके हैं कि वे शासन देवताओं के अस्तित्व को मानते हैं। ऐसा कोई जैन नहीं हो सकता जो इन्हें न माने, यहाँ

तक कि कानजी पंथ भी इन्हें मानते हैं; किन्तु मि. काला जी ये सब लोग आपकी तरह न एक आँख से देखते हैं और न अपने वक्तव्यों से 'चोर की दाढ़ी में तिनका' लोकोक्ति को चरितार्थ करते हैं। आपमें साहस नहीं था अतः आपने अपने परिपत्र में अधूरा निर्णय प्रकाशित किया और 'शासन देवी-देवताओं की पूजा-विधान-अनुष्ठान आदि आगम सम्मत नहीं हैं' के आगे मात्र दो बिन्दु...लगाकर अपनी भड़ाँस निकालना प्रारम्भ कर दी; जबकि सर्वसम्मति से पारित निर्णय में स्पष्ट था और है कि-

शासन देवी-देवताओं की पूजा-विधान-अनुष्ठान आदि आगम सम्मत नहीं हैं अतः तीर्थकरों के समान उनका पूजन-विधान-अनुष्ठान नहीं करना चाहिए।

आप यहाँ यह भी नहीं कह सकते कि हम लोगों ने कुछ छिपाया है क्योंकि उक्त अपील जिनभाषित, जैन हलचल, विद्वद्विमर्श, जैनमित्र, जैनप्रचारक, जैनसंदेश, पार्श्वज्योति आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कर जगजाहिर की जा चुकी है। हम तो जो कहते हैं सबके सामने कहते हैं, किसी से ना कुछ छिपाते हैं और न दो बिन्दु...लगाकर भ्रमित करते हैं।

रही बात मुनिपुङ्गव श्री सुधासागरजी महाराज के सान्निध्य की, तो हम यहाँ स्पष्ट रूप से बता दें कि मुनिपुङ्गव श्री सुधासागरजी महाराज विद्वानों की सर्वसम्मति राय में सच्चे आगमिक संत हैं। वे भले ही आचार्य न हों किन्तु, आचार्य से कम भी नहीं हैं। मेरी दृष्टि में हर संत समाज का 'आचार्य' ही है उसके लिए किसी की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। समाज का आचार्यत्व अगर मुनिपुङ्गव श्री सुधासागरजी महाराज जैसे संत नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा? मुझे समझ में नहीं आता कि यदि समाज उनका मार्गदर्शन लेती है, उन्हें मानती और पूजती है, तो आपको उनसे तकलीफ क्यों है ?

यहाँ जो बात दर्पण की तरह स्पष्ट प्रतिभासित हो रही थी उसे अपनी ही फूँक मारकर दर्पण को धुँधला कर फिर यह शिकायत करना कि यह कैसा दर्पण है जिसमें कुछ दिखलाई नहीं दे रहा है? स्वयं को धोखे में रखने के अतिरिक्त और क्या है?

मैं मि. काला से स्वयं पूछता हूँ कि उन्हें उक्त समग्र प्रस्ताव में आपत्ति कहाँ है?

क्या शासन देवी-देवताओं की पूजा-विधान-अनुष्ठान तीर्थकरों के समान होना चाहिए? तीर्थकर सेव्य हैं और शासन देव-देवियाँ उनके सेवक; क्या सेव्य और सेवक की पूजा-अर्चना एक समान होना चाहिए?

यदि आपका उत्तर हाँ में है तो हम जानना चाहते हैं कि यह किस शास्त्र में लिखा है?

क्या प. पू. आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज की परम्परा यह कहती है?

मैं विगत लगभग २५ वर्षों से शास्त्रपरिषद् / विद्वत्परिषद् से जुड़ा हूँ उसमें कभी भी विद्वानों के बीच १३ या २० पंथ के नाम पर भेद नहीं किया गया, उसका इतिहास भी ऐसा ही रहा है। अब आप क्यों इस तरह का भेद उत्पन्न कर इतिहास में अमर होना चाहते हैं। रही बात २० पंथी विद्वानों के अनुमोदन की, तो खुले अधिवेशनों में जो भी निर्णय बहुमत या सर्वसम्मति से लिए जाते हैं, वे सब पर लागू होते हैं चाहे वे उपस्थित हों या न हों। अतः किसी से अलग से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। जिन सदस्यों को अपनी ही परिषदों के निर्णय स्वीकार्य नहीं हैं उन्हें स्वयं उन परिषदों में रहने पर विचार करना चाहिए। दोनों परिषदों के संविधान तो इस विषय में स्पष्ट हैं कि जो उनकी रीति-नीति को मानता है वही इनका सदस्य बन सकता है/ सदस्य रह सकता है।

प.पू. मुनि श्री सुधासागरजी महाराज न किसी को अपमानित करते हैं, न किसी के प्रति घृणित व्यवहार करते हैं और न ही आरोप लगाते हैं अतः आपका विषय में आक्षेपात्मक कथन बेबुनियाद है। हाँ, सच्चाई यदि कड़वी हो तो भी पचाने की ताकत होनी चाहिए। नीतिकार तो कहते हैं कि यदि किसी ने गाली भी दी तो उस पर विचार करो कि

उसने गाली क्यों दी?

सोचिए ये कि क्यों वो दे गया गाली, टालिए मत कि कोई सिरफिरा होगा।

उक्त प्रस्ताव रखे जाने से पूर्व शास्त्रपरिषद् के पूर्व कार्याध्यक्ष एवं महामंत्री तथा वर्तमान उपाध्यक्ष डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) ने स्पष्ट रूप से कह दिया था कि यदि कोई एक व्यक्ति या विद्वान् सदस्य इनका विरोध करता है तो यह प्रस्ताव पारित नहीं किये जायेंगे, अतः श्री महेन्द्र जैन 'मनुज' का यह लिखना कि "जिसकी छाँव में बैठिये, उसके अनुकूल कहिये, सूत्रानुसार लिये गये निर्णय सिर्फ मुनिपुङ्गव परिसर तक के लिए ही मान्य थे, उससे बाह्य परिसर के लिए नहीं?" नितान्त अनुचित है। वे स्वयं वहाँ उपस्थित थे। यदि वे पीठ पीछे विपरीत राय रख सकते हैं तो सामने क्यों नहीं बोले? जैन धर्म तो निर्भीकता और अभय का पक्षधर होता है; फिर अभिव्यक्ति में भय कैसा?

अपने उक्त प्रस्ताव के सन्दर्भ में लिखा है कि "क्या दिगम्बर जैन समाज एक और अपवाद / एक और विघटन झेलने को तैयार है?" तो ध्यान रखें कि आपके भड़कने से समाज न विघटित होगा और न समाज का अपवाद होगा। दो प्रश्नवाची चिह्न लगाने से भी कोई सही प्रश्न बन जाये यह जरूरी नहीं। हाँ, यदि आप तीर्थकर और स्वर्ग के देवों को एक जैसा मानकर पूजोगे तो यह जिनेन्द्रदेव का अवर्णवाद अवश्य होगा। जिसे कोई भी जिनागम सेवी झेलने के लिए तैयार नहीं होगा। आशा है श्री भरत काला सही सन्दर्भ में अपनी अभिव्यक्ति देंगे और समाज को गुमराह करने से बचेंगे।

मंत्री- अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्,  
एल- ६५, न्यू इंदिरानगर, बुरहानपुर ( म.प्र.)

### संस्थान के गौरव

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर के छात्र 'श्री पुलक गोयल' ने 'प्राकृत अपभ्रंश-जैनागम' में यू.जी.सी. की तरफ से दी जाने वाली जे.आर.एफ. (जूनियर रिसर्च फेलोशिप) लेकर अपनी अद्भुत प्रतिभा दिखलाकर संस्थान को गौरवान्वित किया। संस्थान उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

### साहित्य में स्वर्णपदक

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर के पूर्व छात्र राजेन्द्र जैन 'राजाभाऊ' (महा.) ने एम.ए. (साहित्य) में तिरुपती विद्यापीठ से स्वर्णपदक प्राप्त किया तथा अन्य क्षेत्रों में तीन स्वर्णपदक और लेकर अपनी क्षमता का परिचय दिया। संस्थान यही कामना करता है कि आप अपने जीवन में अग्रसर होते रहें।

आशीष जैन  
श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर

# जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

**जिज्ञासा-** परमाणु का आकार कैसा होता है, बताइये?

**समाधान-** इस संबंध में निम्न प्रमाण दृष्टव्य है:-

१. आदि पुराण पर्व २४ श्लोक १४८ में इस प्रकार कहा है:-

अणवः कार्यं लिंगाः स्युः द्विस्पर्शाः परिमंडलाः ।

एक वर्ण रसा नित्याः स्युरनित्याश्च पर्ययः ॥१४८ ॥

**अर्थ-** वे अणु अत्यंत सूक्ष्म, कार्य से पहिचान में आने वाले, दो स्पर्श-एक गंध, एक वर्ण, एक रस वाले, गोलाकार, और नित्य होते हैं, पर्याय की अपेक्षा अनित्य भी होते हैं ।

२. श्री आचारसार में इस प्रकार कहा है:-

अवुश्च पुद्गलोऽमेद्यावध्वः प्रचय शक्तितः ।

कामश्च स्कंध भेदोत्थ चतुरस्रस्त्वतीन्द्रिय ॥३/१३ ॥

**अर्थ-** अभेद अवयव वाला, प्रचय शक्ति की अपेक्षा कायवान, स्कंध के भेद से उत्पन्न चतुष्कोण, अतीन्द्रिय, ऐसा पुद्गल का अणु है । अर्थात् अणु चौकोर आकार वाला है ।

३. पं. माणिकचंदजी कौन्देय (टीकाकार-श्लोक वार्तिक) ने अपनी पुस्तक 'शुद्ध द्रव्यों की आकृतियाँ' में अणु का आकार चौकोर कहा है ।

इस प्रकार अणु के आकार के संबंध में दो प्रमाण प्राप्त होते हैं ।

**प्रश्नकर्ता-** श्रीमती कमलेन्दु जैन आगरा

**जिज्ञासा-** नरकों में तो घना अंधकार होता है । फिर नारकी एक दूसरे को पहचान कर मार-पीट कैसे करते होंगे?

**समाधान-** नरकों में घोर अंधकार स्वभाव से ही होता है । जैसा निम्नप्रमाणों से ज्ञात होता है:-

१. तिलोय पण्णत्ति २/१०२ में कहा है-

उत्तपदण्णय मज्जे हों तिहु वहवो असंख वित्थाटा ।

संखेज्जावास जुत्ता थोवा होर-तिमिर-संजुत्ता ॥१०२ ॥

**अर्थ-** पूर्वोक्त प्रकीर्णक बिलों में, असंख्यात योजन विस्तार वाले बिल बहुत हैं । और संख्यात योजन विस्तार वाले थोड़े हैं । ये सब बिल घोर अंधकार में व्याप्त रहते हैं ।

१. श्री त्रिलोकसार में भी इसी प्रकार कहा है:

कुहिदादइ दुग्ग्धा णिरया णिच्चंधयार चिदा ॥१७८ ॥

**अर्थ-** उन बिलों में अत्यंत दुर्गंध है तथा वहाँ सदैव अंधकार व्याप्त रहता है ।

इसी प्रकार उन नरकों में सदैव घोर अंधकार व्याप्त रहता है । इस पर आपका यह प्रश्न स्वाभाविक ही है । कि फिर नारकी एक दूसरे को कैसे देख पाते होंगे? मैंने इस प्रश्न को विभिन्न शास्त्रों में अच्छी तरह ढूँढा, पर कहीं भी उत्तर न मिलने पर, यह प्रश्न मैंने पू.आचार्य विद्यासागरजी महाराज को निवेदित किया था । पू. आचार्यश्री ने बताया कि जैसे उल्लू को रात्रि में ही दिखता है दिन में नहीं, उसी प्रकार इन नारकियों को भी ऐसे ही कार्य का उदय मानना चाहिये जिससे उनको अंधकार में भी सब कुछ दिखायी देता हो । हमें भी अपनी मान्यता तदनुसार बनानी चाहिये ।

**प्रश्नकर्ता-** पं. गुलजारी लाल जी, रफीगंज, गया

**जिज्ञासा-** क्या भवनवासी देवों का भी जन्म के बाद अभिषेक होता है?

**समाधान-** वैमानिक देवों का तो जन्म के बाद अभिषेक होता ही है, यह तो सबको ज्ञात है आपका तात्पर्य यहाँ भवनत्रिक देवों से है । इस संबंध में तिलोय पण्णत्ति अ. ३/२२६ में इस प्रकार कहा है:-

पठमं दहण्हदाणं तत्तो अभिसेय-मंडल-गदाणं ।

सिंहासण द्विदाणं, एदाण सुरा कुर्णति अभिसेयं ॥२२६ ॥

**अर्थ-** सर्वप्रथम स्नान करके, फिर अभिषेक-मंडप के लिये जाते हुये (तुरंत उत्पन्न) देव को सिंहासन पर बैठाकर ये (अन्य) देव अभिषेक करते हैं ।

उपरोक्त गाथा से स्पष्ट होता है कि भवनवासी देवों का, उत्पन्न होने के बाद अभिषेक किया जाता है । परंतु ऐसा कथन व्यंतर एवं ज्योतिषी देवों के वर्णन में, किसी भी शास्त्र में उपलब्ध नहीं होता है । इससे यह मानना चाहिये कि भवनवासी देवों का तो जन्म के बाद अभिषेक होता है, अन्य व्यंतर एवं ज्योतिषी का नहीं होता ।

**प्रश्नकर्ता-** रूपचंद्र बंडाबेल

**जिज्ञासा-** उदयाभावी सच का क्या स्वरूप है?

**समाधान-** उदयाभावी सच का स्वरूप आगम में इस प्रकार कहा है ।

१. श्री धवला पु. ७/९२ सव्वधादि फद्दयाणि अणंत गुण हीणाणि हो दूण देसधादि फद्दयत्रणेण परिणमिय उदयमा



गच्छति तेसि भणंत गणहीणत्र खओणाम ।

**अर्थ-** सर्वधाती स्पर्धक अनंत गुणहीन होकर और देशधाती स्पर्धकों में परिणत होकर उदय में आते हैं उन सर्वधाति स्पर्धकों का अनंत गुणहीनत्व ही क्षय कहलाता है ।

२. श्री राजवर्तिक २/५ में इस प्रकार कहा है-

यदा सर्वधाति स्पर्धकस्योदयो भवति तदेषदप्यात्म गुणस्यामि व्यक्तिर्नास्ति तस्मात्तदुदयस्याभावः क्षय इत्युच्यते ।

**अर्थ-** जब सर्वधाति स्पर्धकों का उदय होता है तब तनिक भी आत्मा के गुण की अभिव्यक्ति नहीं होती इसलिये उस उदय के अभाव को उदयाभावी क्षय कहते हैं ।

**भावार्थ-** जब सर्वधाति स्पर्धक, देशधाति रूप उदय आने लगे, तब उदयाभावी क्षय कहलाता है । जैसे- क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के काल में, दर्शन मोहनीय की सर्वधाति दोनों प्रकृतियाँ मिथ्यात्व एवं सम्यक्मिथ्यात्व, उदयावली में रहते हुये, उदय में आने से एक समय पूर्व अनंतगुणहीन होकर, सम्यक्प्रकृति रूप होकर उदय में आती हैं, यही उदयभावी क्षय कहलाता है ।

१. प्रश्नकर्ता- पं. आलोक शास्त्री छिंदवाड़ा

**जिज्ञासा-** कुभोगभूमि तिर्यज्ज्वों का भोजन क्या है? क्या कुभोगभूमि में कल्पवृक्ष होते हैं?

**समाधान-** कुभोगभूमि में कल्पवृक्षों का वर्णन शास्त्रों में नहीं मिलता है, अर्थात् कुभोगभूमि में कल्पवृक्ष नहीं होते हैं। वहाँ के जीवों के भोजन के संबंध में तिलोयपण्णत्ति ४/२५२१ में इस प्रकार कहा है:-

एक्कोरुगा गुहासुं, वसंति भुजंति मट्टियं मिट्टं ।

सेसा तरुतलवासा, पुप्फेहि फलेहि जीवंति ॥२५२१॥

**अर्थ-** एक सब में से एको रुक (एक जांघ वाले) कुमानुष गुफाओं में रहते हैं और मीठी मिट्टी खाते हैं। शेष सब कुमानुष (मनुष्य एवं तिर्यच युगल) वृक्षों के नीचे रहकर फल फूलों से जीवन व्यतीत करते हैं। श्री राजवर्तिक में भी इसी प्रकार कहा है ।

१/२०५, प्रोफेसर्स कालोनी

आगरा-२८२००२ उ.प्र.

## श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास, सांगानेर, जयपुर प्रवेश सूचना

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान द्वारा संचालित महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास का ग्यारहवाँ सत्र १ जुलाई २००७ से प्रारम्भ होने जा रहा है। यह छात्रावास आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न व अद्वितीय है। जहाँ छात्रों को आवास, भोजन, पुस्तकें, शिक्षण आदि की समस्त सुविधाएँ निःशुल्क उपलब्ध हैं।

यहाँ छात्रों को राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड व राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय के निर्धारित पाठ्यक्रम का अध्ययन नियमित छात्र के रूप में श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, सांगानेर, जयपुर में कराया जाता है। कॉलेज के पाठ्यक्रम एवं पठन के अतिरिक्त संस्थान में जैनदर्शन, संस्कृत, अंग्रेजी, ज्योतिष, वास्तु तथा कम्प्यूटर शिक्षा आदि विषयों का अध्ययन, योग्य अध्यापकों द्वारा कराया जाता है।

इस छात्रावास में रहते हुए छात्र शास्त्री (स्नातक) परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् जैन दर्शन के योग्य विद्वान तो हो ही जाते हैं, साथ ही सरकार द्वारा आयोजित I.A.S., R.A.S., M.B.A. एवं M.C.A., जैसी सभी प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित हो सकते हैं तथा अपनी प्रतिभा के अनुरूप विषयों का चयन कर उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

प्रवेश के इच्छुक जिन छात्रों ने इस वर्ष दसवीं की परीक्षा अंग्रेजी विषय सहित दी है अथवा उत्तीर्ण की है, वे दिनांक ५ जून २००७ से १२ जून २००७ तक लगने वाले प्रवेश चयन शिविर में निम्न पते पर सम्मिलित हों, जहाँ परीक्षा एवं साक्षात्कार के आधार पर योग्य छात्र का चयन किया जावेगा।

शिविर स्थल - श्री विभव कुमार कोठिया (मंत्री)

श्री दिगम्बर जैन नाभिनन्दन हितोपदेशी सभा इटावा मोहल्ला,

बीना, जिला सागर म.प्र. 07580-223333

## समाचार

### पत्रिका पढ़नेवालों से अनुरोध

पिछले दिनों 16 फरवरी को भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सालय, सागर में परम पूज्य गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के संसघ सान्निध्य में 'प्रथम अखिल भारतीय जैन महिला सम्मेलन' का आयोजन किया गया। जिसमें पूरे भारत वर्ष से करीब 10,000 महिलाओं ने हिस्सा लिया। इस महिला सम्मेलन में महिलाजगत् से संबंधित विषयों पर भारतवर्ष के श्रेष्ठ महिला वक्ताओं द्वारा अपनी बात रखी गई और अंत में महिला सम्मेलन में आई महिलाओं द्वारा एक स्वर में विधवाओं एवं परित्यक्ता महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा करने का संकल्प लिया। उसी संकल्प को पूरा करने हेतु 'एक जैन विधवा एवं परित्यक्ता सर्वे' का कार्य किया जाना है। अतः आप पत्रिका के पाठकों से अनुरोध है कि आपके घरों में कार्य करनेवाली जैन महिला कर्मचारी या आसपड़ोस में रहनेवाली कोई जैन महिला जो कि विधवा या परित्यक्ता है आप उस तक इस पत्रिका में छपे हुए फार्म को भिजवा कर उस महिला को जागरूक करें कि वो इस सर्वे के कार्य में शामिल हो और आप भी एक जैन समाज के कार्यकर्ता होने के नाते इतना योगदान इस महान् कार्य में दें। हमें जैसे ही विधवा और परित्यक्ताओं की जानकारी प्राप्त होगी हम उनसे संबंधित सुरक्षित रोजगार के साधनों को उपलब्ध करायेगें और उन्हें आत्मनिर्भर बनाते हुए सामाजिक सुरक्षा प्रदान करेंगे। यह सहयोग करना न भूलें। आप चाहें तो इस विषय को मंदिर जी में लगा सकते हैं। और फार्म की फोटोकापी कराकर वितरित कर सकते हैं।

पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने प्रथम बार इन महिलाओं के उद्धार को लेकर चिंतन किया है और उन्हीं की भावनाओं को फलीभूत करने हेतु यह प्रथम चरण है। कृपया आप अपने आस-पास केवल विधवा और परित्यक्ता महिलाओं को तलाश कर इस सर्वे कार्य को पूर्ण करने में सहयोग दें एवं इस कार्य में आपके सुझाव एवं सहयोग भी आमंत्रित हैं। अधिक जानकारी के लिए लिखें या फोन करें-

### रोजगारमूलक एवं आर्थिक सहायता हेतु केवल विधवा एवं परित्यक्ताओं के लिए

1. विधवा/परित्यक्ता महिला का पूरा नाम -----।
2. पति का नाम -----।
3. जन्मतिथि ----- उम्र वर्तमान में -----।

4. शिक्षा -----।
5. अन्य कोई योग्यता -----।
6. पूरा पत्र व्यवहार का पता -----।  
ग्राम ----- पो. -----।  
जिला ----- राज्य ----- पिन कोड -----।
7. फोन नं. कोड सहित ----- मो. नं. -----।
8. बच्चों की संख्या यदि हो तो -----।  
बच्चों की उम्र क्रमशः -----।
9. पति की मृत्यु कब हुई ----- कैसे हुई -----।
10. आप पति से कितने वर्षों से अलग रह रही हैं -----।
11. आपकी आजीविका का साधन -----।
12. क्या आपका कोई प्रकरण न्यायालय में चल रहा है- यदि हाँ तो - कौन सा -----।
13. क्या आप स्वयं कमाना चाहती है- हाँ/नहीं- यदि कमाना चाहती है तो कितना -----।
14. आप किस प्रकार की नौकरी करना चाहती हैं- 1. शिक्षिका, 2. कम्प्यूटर कार्य 3. सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, 4. नर्सिंग एवं पैथोलॉजी 5. रिसेप्शनिस्ट एवं क्लर्क कार्य 6. प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी कार्य 7. औषधि निर्माण संबंधी कार्य 8. अन्य जो आपको पंसद हो ---
15. क्या आप समाज द्वारा उपलब्ध कराई जा रही जीविको-पार्जन को करना चाहेंगी- हाँ / नहीं।
16. आप क्या वर्तमान में घर छोड़कर नौकरी करने तैयार हैं- हाँ / नहीं।
17. क्या आप अभी कोई कोर्स करना चाहती हैं- हाँ/नहीं यदि हाँ तो कौन सा -----।

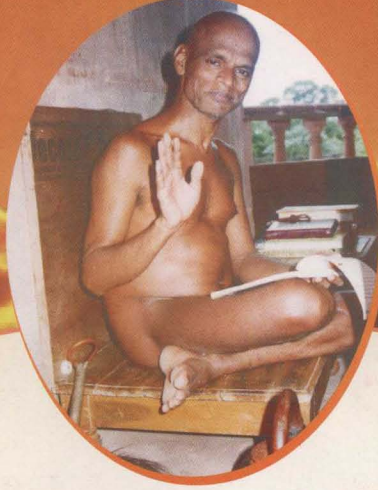
आप उपर्युक्त जानकारी भरकर स्वयं एक लिफाफे में निम्न पते पर पोस्ट करें।

डॉ. रेखा जैन, भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सालय, खुर्ई रोड, सागर म.प्र.- पिन 470001, मो.नं. 094251 71671, 07582-201441।

### श्री विद्यार्थी पदोन्नत, दमोह ए. एस. पी. बने

शासन ने छतरपुर निवासी श्री तुषारकांत विद्यार्थी एस.डी.ओ.पी. इटारसी जिला होशंगाबाद को पदोन्नत कर दमोह जिले का अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक पदस्थ किया है। श्री विद्यार्थी पूर्व विधायक, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी व साहित्यकार स्व. डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी एवं सेवानिवृत्त प्राध्यापिका डॉ. रमा जैन के पुत्र हैं।

इं. सुनील बड़कुल, छतरपुर



● मुनि श्री योगसागर जी

## श्री मुनिसुव्रत नाथ-स्तवन

( शिखरिणी छन्द )

1

अहो मैं क्या गाऊँ अमृतमय गाथा दमकता ।  
उषा की आभा ज्यों संकल जगती को सुखदाता ॥  
सुगंधी पुष्पों की महक सम कीर्ति बहती ।  
अनेकों जीवों में सहज उर में ज्योति जलती ॥

2

मुनीद्रों के स्वामी मुनिसुव्रत तीर्थंकर प्रभो ।  
फँसे हैं कर्मों के दलदल महा दुर्दर विभो ॥  
कृपा के धारी हैं अखिल जग ही नाम जपता ।  
सभी बेचारों के तब शरण में हो सफलता ॥

3

घने काले काले अघमय सघन घन उठ रहे ।  
निबारूँ मैं कैसे बहुत भयकारी लग रहे ॥  
विशुद्धी भावों की तब स्मरण से जागृत हुई ।  
स्तुती के द्वारा तो झर-झर झरे कर्म सब ही ॥

4

बहे सर्वाङ्गो से मधुर भय वाणी अमृत सी ।  
असंख्यातों प्राणी श्रवण कर के शीतल हुये ॥  
भ्रमितों को सच्चे प्रशस्त पथ का दर्शन हुआ ।  
पुरुषार्थी जीवों का अनुपम सु यो पन्थ लगता ॥

5

महाअज्ञानी मैं विविध गति का भाजन हुआ ।  
सुमिथ्यात्वी होकर अपरिमित पापास्रव हुआ ॥  
करूँ सम्यक् आस्था अनुपम विशुद्धी प्रगट हो ।  
यही मेरी इच्छा सकल अघ ही पुण्यमय हो ॥

## श्री नमिनाथ-स्तवन

( द्रुतविलम्बित छन्द )

1

जय प्रभो नमिनाथ जिनेश्वरा ।  
सकल संसृति के परमेश्वरा ॥  
अघविनाशक शान्ति प्रदायका ।  
भविक भवसागर तारका ॥

2

स्वपर-बोधकता तव रूप है ।  
सहज शान्ति कषाय-अभाव है ॥  
हृदय को परिवर्तन जो करे ।  
जगत् में अति दुर्लभतम वरे ॥

3

विषमयी कलिकाल प्रभाव को ।  
मरण को करता तब नाम को ॥  
अशुभ को शुभ में क्षण में करे ।  
पवन बादल को लय ज्यों करे ॥

4

स्तवन के जल में लवलीन है ।  
दुरित तो धुलता स्वयमेव है ॥  
इसलिए दिनरात स्तुती करे ।  
पतितपावन का यह द्वार रे ॥

5

चरणपंकज में मम प्रार्थना ।  
प्रबल शक्ति जगे यह भावना ॥  
वह समाधि महोत्सव देखलूँ ।  
पृथक् आत्मस्वरूप निहारलूँ ॥

प्रस्तुति - रतनचन्द्र जैन

# कैसे मनायें जन्मजयन्ता

क्षुल्लक श्री ध्यान सागर जी

रौब, रुपया, रूप का बना जमाना आज

कल कैसे बच पायेगी संस्कृति और समाज

कैसे मनायें जन्मजयन्ती महावीर भगवान की ?

आज प्रेम सबसे महंगा है क्या कीमत है जान की ?

हाय! अहिंसा बिलख रही है महावीर भगवान की ॥

रक्षक आज बना है भक्षक, किसके पास करे फरियाद ?

जड़-धन पर चेतन-धन का, अब भारत से होता निर्यात ।

मंदिर की घंटा-ध्वनियों से होता है जब प्रातः काल,

चीत्कारते पशुओं का तब आता भीषण अंतिम काल ॥

कैसे मनायें जन्मजयन्ती महावीर भगवान की ?

हिंदू मुस्लिम सिख इसाई जैनी या सिन्धी भाई,

सत्य-अहिंसा-प्रेम यहाँ की सुंदर संस्कृति कहलायी ।

लेकिन अब यह देश हमारा, क्या भारत कहलायेगा ?

जब सारे पशु कट जायेंगे भारत भी मिट जायेगा ॥

कैसे मनायें जन्मजयन्ती महावीर भगवान की ?

खून-सने हैं शौक सभी के दया अभागिन रोती है,

व्यसनों में ही आधी जनता अपना जीवन खोती है ।

भाई से भाई कतराता और बिलखती अबलायें,

बच्चे जन्म नहीं ले पाते, हो जाती हैं हत्यायें ॥

कैसे मनायें जन्मजयन्ती, महावीर भगवान की ?

जीवों में हो प्रेम परस्पर, सदा बड़ों का आदर-भाव,

पीड़ित प्राणी पर करुणा हो, दुर्जन पर ना हो दुर्भाव ।

जो न तुम्हें अच्छा लगता हो, वह न करो और के साथ,

आज कौन सुनता यह बातें बता गये जो जग के नाथ ॥

कैसे मनायें जन्मजयन्ती महावीर भगवान की ?

सत्य-अहिंसा पर बापू ने दृढ़ विश्वास जमाया था,

जिसके बल पर आजादी का तब इतिहास बनाया था ।

उसी वतन का पतन हुआ है तड़प रही हर साँस जहाँ,

अपना देश विदेशों को अब बेच रहा पशु-माँस यहाँ ॥

कैसे मनायें जन्मजयन्ती महावीर भगवान की ?

भारत की पावन धरती पर, बढ़ता है जब हाहाकार,

कहते हैं तब आकर कोई, महापुरुष लेता अवतार ।

यांत्रिक-बूचड़खानों में हाय! आज मरे प्राणी लाचार,

संत हृदय ही रोक सकेगा, ऐसा भीषण अत्याचार ॥

कैसे मनायें जन्मजयन्ती महावीर भगवान की ?

प्रेषक - जिनेंद्रकुमार हरीकिशन जैन  
अमरावती ( महाराष्ट्र )